कुन्दमाला

(नाटक)

हिन्दी अनुवाद

राधावल्लभ त्रिपाठी

कुन्दमाला

(नाटक)

हिन्दी अनुवाद

राधावल्लभ त्रिपाठी

वेणीसंहार नाटक

का

आख्यायिका के रूप में भावार्थ

लेखक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

मुद्रक और प्रकाशक

भगवानदास गुप्त

कमर्शल प्रेस, कानपुर।

द्वितीय संस्करण] १९२६ मूल्य ॥=)
सजिल्द ॥)
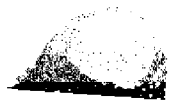
रह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पाण्डवों ने पालन कर दी। प्रतिज्ञा का पालन कर चुकने पर दुर्योधन को उन्हें उनका राज्य लौटा देना चाहिए था। परन्तु उस लोभी, अन्यायी और धूर्त्त ने उन्हें राज्य लौटाने से इनकार कर दिया। लोगों ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया; परन्तु इसका कुछ भी फल न हुआ। परस्पर मेल हो जाने की अनेक चेष्टायें की गईं; पर व्यर्थ। तब श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर जाकर सन्धि करने के लिए एक बार स्वयं चेष्टा करनी चाही। युधिष्ठिर और अर्जुन आदि ने उनसे कहा— "आप का हस्तिनापुर जाना बेकार है। अविचारी दुर्योधन कभी आप की बात मानने का नहीं।" श्रीकृष्ण ने

कहा—"यदि मेरा जाना व्यर्थ हो जाय तो भी कुछ हर्ज नहीं। संसार को यह तो मालूम हो जायगा कि पाण्डवों ने कुलक्षय बचाने के लिए जहां तक सम्भव था प्रयत्न किया। तुम्हें इस बात की आशंका न करनी चाहिए कि वहां जाने से मेरा अपमान होगा अथवा मुझे किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाया जा सकेगा। मैं अपनी रक्षा करने का पूरा सामर्थ्य रखता हूँ।" यह कह कर श्री कृष्ण ने हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान कर दिया।

युधिष्ठिर के भाई भीमसेन और अर्जुन दुर्योधन की अपेक्षा अधिक बली थे; साहस भी उन में बहुत अधिक था; डर उन्हें छू तक न गया था। वे सभी कौरवों की अनीति, धूर्त्तता और धोखेबाज़ी से बेतरह जल रहे थे। इस कारण भीमसेन ने जब सहदेव से श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर जाने का समाचार सुना तब उन के क्रोध की मात्रा बहुत ही बढ़ गई। वे मन ही मन बेतरह कुढ़े और जो कुछ मुंह से निकला भला बुरा कहने लगे। वे बोले:—

"दुर्योधन बड़ा पापी है, बड़ा क्रूर है, बड़ा कृतघ्न है। उस के सदृश कुटिल और कपटी कुरुकुल में तो क्या संसार में कोई दूसरा न होगा। कौरवों के कुल में वह कलङ्क रूप है। जिस कुलाङ्गार ने हम लोगों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये, भोजन में हमें विष दिया, लाख के घर में रख कर आग लगा दी, भरी सभा में बाल

खींचते हुए द्रौपदी को पकड़ बुलाया यहाँ तक कि उसने द्रौपदी को नङ्गा तक कर डालना चाहा, उसके साथ सन्धि-स्थापन करने के लिए इतनी चेष्टा! अच्छी बात है, श्रीकृष्ण जी मेल करा दें। बड़े भाई युधिष्ठिर राजा ठहरे; वे खुशी से मेल कर लें। गाण्डीवधारी अर्जुन भी बड़े भाई का साथ दें। पर भीम मेल करने वाला नहीं। भीम तब तक सुप्रसन्न और सन्तुष्ट होने का नहीं जब तक दुर्योधन की जङ्घा को अपनी भीषण गदा की चोटसे चूर चूर न कर देगा।"

उस समय भीम के पास उनका और कोई भाई न था; सहदेव अवश्य थे। वे भीमसेन के इतने रोषपूर्ण वचन सुनकर उन्हें शान्त करने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने कहा—"भाई, आप को जल्दी नहीं करनी चाहिए। यदि राजा युधिष्ठिर आपके ये क्रोधपूर्ण वचन सुन पावेंगे तो उन्हें और भी दुःख होगा।" यह सुन कर भीमसेन बोले :—

"दुःख होगा! राजा को! आप के राजा को! क्या वे दुखी होना भी जानते हैं? जिस का नाम दुःख है वह तो उनको छठी ही में नहीं रक्खा गया। यदि उन्हें दुःख होता, यदि वे दुःख करना जानते तो हम लोगों की जो इतनी दुर्गति हुई है वह क्यों होती? जिस राजा ने दुःशासन के द्वारा द्रौपदी का वस्त्र खींचाजाना अपनी आंखों से देखा और फिर भी टस से मस न हुए; जो बारह वर्ष तक पेड़ों की छाल के कपड़े पहन कर वन वन

घूमते फिरे; जिन्होंने जङ्गली फल-फूल और कन्द-मूल खा कर अपने दिन काटे; जिन्होंने राजा विराट के यहां एक वर्ष तक पाँसे खेल कर अपनी प्रतिष्ठा खोई उन को भी कभी दुःख हो सकता है ? उन को न कभी दुःख हो सकता है, न कभी रोष । मैं तो यही चाहता हूं कि उन को किसी तरह दुःख हो । क्या ही अच्छा हो यदि तुम क्रोधाग्नि में जलते हुए मेरे ये वचन उन से जाकर कह दो । मेरे वचन ये हैं कि मैं प्रण करता हूं कि आपकी की हुई सन्धि की कुछ भी परवा न कर के मैं कुरुओं का संहार किये बिना न रहूंगा । अतएव आज न आप मेरे बड़े भाई और न मैं आपका आज्ञा-कारी सेवक । अच्छा तुम तो जाकर राजा से मेरा यह सन्देश कह दो; मैं शस्त्रागार से शस्त्र ले कर युद्ध की तैयारी करने जाता हूं । ”

भीम उस समय क्रोध के समुद्र में आकण्ठ मग्न थे । उनके होश हवास तो ठिकाने थे ही नहीं । शस्त्रा-गार में न जाकर वे द्रौपदी के घर में घुस गये । इस पर उन से और सहदेव से इस प्रकार बातचीत हुई ।

सहदेव—“भाई साहब, यह शस्त्रागार नहीं । यह तो पाञ्चाली का कमरा है । ”

भीमसेन—“क्या कहते हो, यह शस्त्रागार नहीं ? तुम ने सच कहा । अच्छी बात है, तो मैं द्रौपदी से मिल कर लड़ाई पर जाऊंगा । ”

सहदेव—"बहुत अच्छा. आप बैठ जाइए और कृष्णागमन की प्रतीक्षा कीजिए।"

कृष्णागमन से सहदेव का मतलब कृष्णा अर्थात् द्रौपदी के आगमन से था। परन्तु उस सामासिक शब्द के पूर्वार्द्ध ने भीमसेन को कृष्ण की याद दिला दी। इस कारण उन्होंने सहदेव से पूंछा कि अच्छा यह तो बतलाओ कि किन शर्तों पर सन्धि करने के लिए श्रीकृष्ण जी दुर्योधन के पास भेजे गये हैं?

सहदेव—"भाई साहब, शर्त यह है कि दुर्योधन हमें यदि पांच गांव दे दे तो हम राज्य पाने का दावा छोड़ दें।"

यह सुनते ही भीमसेन के सारे शरीर में आग सी लग गई। वे बोले—"हाय! मेरे बड़े भाई अजातशत्रु युधिष्ठिर के तेज का इतना अपकर्ष! इस बात को सुनते ही मेरा हृदय तो पीपल के पत्ते की तरह थर थर कांप रहा है। इस शर्त का समाचार अब तक मुझे मालूम ही न था। जान पड़ता है कि, जुआ खेलते समय राजा ने जब अपना राज-पाट हार दिया था तभी अपना अति उग्र क्षत्रिय-तेज भी वे हार गये थे। हाँ, तो फिर पांच गांव ले कर सन्धि कर ही ली जायगी! क्या मैं संग्राम में धृतराष्ट्र के सारे पुत्रों को अपने कोपरूपी प्रज्वलित पावक में जला कर खाक न करने पाऊंगा? क्या मैं अपनी भयङ्कर गदा से उस जंघा को, जिस पर द्रौपदी को बिठाने

के लिए दुर्योधन ने इशारा किया था, चूर चूर न कर सकूंगा ? क्या मैं दुःशासन की छाती फाड़ कर उसके रुधिर-पान से अपनी प्यास न बुझा सकूंगा ? क्या यह सब करके द्रौपदी के अपमान का बदला चुकाने का मुझे मौक़ा ही न मिलेगा ? समझ लिया ; हो चुका । राजा की अक़्ल पर सचमुच ही पत्थर पड़ गये । बेहतर है, वे ख़ुशी से सन्धि कर लें । उस सन्धि से भीमसेन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं ।"

सहदेव—"आर्य, आप ने महाराज की शर्त का ठीक मतलब नहीं समझा।"

भीमसेन—"मतलब नहीं समझा ? अच्छा तो तुम समझा दो ।"

सहदेव—"महाराज ने दुर्योधन से इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त और वारणावत ये चार गांव मांग कर अपने अपमान आदि से सम्बन्ध रखने वाली उन चारों घटनाओं का स्मरण कराया है । इन्द्रप्रस्थ से उन्होंने यह सूचित किया है कि रे दुर्योधन तू वही है जिसने हम लोगों को हस्तिनापुर से निकाल दिया था। वृकप्रस्थ से यह सूचित किया है कि तू ने ही हम लोगों को विष दिया था । जयन्त से इस बात का इशारा किया है कि वहीं पर तू ने जुए में कपट कर के हमारा सर्वस्व छीना था। और, वारणावत से इस बात का इशारा किया है कि वहाँ तू ने ही हम लोगों को आग में जलाने की चेष्टा की थी ।

पाँचवें गांव का नाम उन्होंने नहीं बताया। सिर्फ यह कहा है कि पांचवें की जगह कोई भी ग्राम दे देना। यहाँ कोई से उन का अभिप्राय 'ग्राम' शब्द के पहले 'सं' उपसर्ग जोड़ देने से है। मतलब यह कि पांचवें गांव के बदले उन्होंने संग्राम मांगा है और यह सूचित किया है कि युद्ध में तेरा पराजय करके तेरे सारे छल, कपट और अन्याय का बदला हम लोग चुका लेंगे।"

भीम—"अच्छा तो इस बखेड़े से क्या लाभ होगा?"

सहदेव—"आर्य्य, इससे यह प्रकट हो जायगा कि हम लोग अपने बन्धु बान्धवों का युद्ध में नाश करना उचित नहीं समझते। इससे यह भी सब पर विदित हो जायगा कि जहां तक सम्भव था युधिष्ठिर ने युद्ध रोकने की चेष्टा की। फिर भी जो सन्धि नहीं हुई तो इसमें हम लोगों का कोई दोष नहीं।"

भीम—"यह सब बेकार है। कौरवों से सन्धि होना सम्भव नहीं। सन्धि की असम्भवनीयता तो तभी ज्ञात हो गई थी जब वन को प्रस्थान करते समय हम लोगों ने कुरुकुल के संहार की प्रतिज्ञा की थी। विश्वास रक्खो, धृतराष्ट्र के वंश का अवश्य ही नाश होने वाला है।"

भीमसेन के मुंह से ऐसे गर्वपूर्ण वचन और ऐसी विकट फटकार सुनकर सहदेव कुछ लज्जित से हो गये। उनकी यह दशा देख भीम गर्ज कर बोले—"कुरुकुल का नाश होने से सर्वसाधारण के सामने मुंह दिखाने में तुम

लोगों को लज्जा आवेगी! क्यों नहीं!! बड़े लज्जालु ठहरे न!!! लज्जा का एक मात्र आश्रय इस समय अब तुम्हीं मालूम होते हो। अरे मूर्ख! शत्रुओं के वंश-नाश के ख़याल से तो तुम लोगों को लज्जा आती है; पर बीच सभा में द्रौपदी के बाल पकड़ कर जो उसका अपमान किया गया था उस से भी तुम्हें क्या कुछ लज्जा आई थी? वह शायद लज्जा की बात ही न थी। तुम लोगों की सलज्जता को धिक्कार!"

भीमसेन इस प्रकार अपने भाइयों की भर्त्सना कर ही रहे थे कि अपनी दासी को साथ लिये हुए द्रौपदी वहां आ पहुंची। सहदेव ने ज्योंही द्रौपदी को देखा त्योंही उनका माथा ठनक उठा। उन्होंने मन ही मन कहा कि अब अनर्थ हुए बिना न । आर्य्य भीमसेन के हृदय में बिजली की चमक समान क्रोध की ज्योति जो उत्पन्न हुई है उसे ऋतु के समान आई हुई द्रौपदी अवश्य ही बढ़ा देगी।

भीमसेन उस समय इतने क्रोधान्ध हो रहे थे दासी समेत द्रौपदी के पास आ जाने पर भी ने उसे न देखा। वे सहदेव से पूर्ववत् घृणा, र और रोषसूचक बातें करते ही रहे। उनके कथो-न को सुनकर द्रौपदी को बहुत सन्तोष हुआ। उसने ी मन कहा कि आर्य्य भीमसेन जैसा कह रहे हैं अन्य पतियों को सचमुच ही लज्जा नहीं। यदि कुछ भी लज्जा होती तो अवश्य ही वे मेरे अप-

मान का बदला लेने से न चूकते। आर्य्य भीमसेन ने दुर्योधन और दुःशासन आदि के मारने की जो प्रतिज्ञा की है, भगवान् करे उस पर वे दृढ़ बने रहें।

इतने में भीमसेन के होश जो कुछ ठिकाने आये तो उन्होंने सहदेव से पूछा कि क्या कारण है जो द्रौपदी अब तक नहीं आई। लड़ाई के मैदान में जाने के लिए मुझे बड़ी जल्दी हो रही है। इस पर सहदेव ने कहा कि देवी द्रौपदी को आये तो बड़ी देर हुई। क्रुद्ध होने के कारण आप ने उसे नहीं देखा। यह सुनकर भीम-सेन ने जो आंख उठाई तो द्रौपदी को उन्होंने पास ही खड़ी देखा। तब वे बोले:—

"देवी, क्षमा कीजिए। क्रोधावेश के कारण मैंने तुम्हें नहीं देखा। तुम्हें मुझ पर क्रुद्ध न होना चाहिए।"

द्रौपदी—"नाथ, मैं तनिक भी क्रुद्ध नहीं। आप को कुपित देखकर मुझे क्रोध नहीं आ सकता। क्रोध तो मुझे आप को उदासीन बने हुए चुप चाप बैठे देखकर आता है।" यह कह कर वह ठंडी सांसें लेने लगी। भीम-सेन ने उसकी यह दशा देखकर उसे पास बिठा लिया और उसके दुःख का कारण पूछा।

भीम—"क्यों, बात क्या है? अपने दुःख का कारण तुम क्यों नहीं बतातीं? अथवा बताने की आवश्यकता ही क्या है। तुम्हारे ये खुले हुए केश ही तुम्हारे दुःख का

कारण बता रहे हैं। हाय! पाण्डु के पांच पुत्रों के रहते तुम्हारी यह गति!"

यह सुनकर द्रौपदी ने अपनी दासी बुद्धिमतिका से दुःख का कारण बताने के लिए इशारा किया। दासी ने हाथ जोड़ कर भीमसेन से कहा—"कुमार, देवी के दुःख का इससे भी बड़ा एक और कारण आज उपस्थित हुआ है। माता कुन्ती और सखी सुभद्रा आदि के साथ पाञ्चाली आज माता गान्धारी को नमस्कार करने गई थीं। वहाँ दुर्योधन की रानी भानुमती से भेंट हो गई। उसने देवी की तरफ पहले तो तिरछी नज़र से देखा। फिर वह कुछ हंसी और हंस कर कहा कि तेरे पति पांच गांव लेकर सन्धि करने को तैयार हैं। फिर तू अब क्यों अपने खुले हुए केश नहीं बांध लेती?"

यह सुनते ही भीमसेन का क्रोध दूना हो गया। उनके सारे शरीर में आग सी लग गई। वे बोले—"आह! शत्रु की स्त्री ने पाञ्चाली की तरफ टेढ़ी निगाह से देखा ही नहीं, किन्तु वह हँसी भी! और हँसी ही नहीं, उसने ऐसी मर्मभेदक बात भी कह डाली। क्यों न कहे, सहवास के कारण स्त्रियों का स्वभाव भी पतियों के सदृश हो जाता है। विषवृक्ष से लिपटी हुई मीठी भी लता का फल खा लेने से मनुष्य मूर्छित हो जाता है। अच्छा, बुद्धिमतिके, भानुमती की पूर्वोक्त बात का देवी ने क्या उत्तर दिया?"

बुद्धिमतिका—"कुमार, देवी तो तब उत्तर देतीं जब और कोई उस समय उनके साथ न होता। मेरे रहते वे क्यों उसकी बात का उत्तर देतीं। ज्यों ही मैंने भानुमती के मुँह से ऐसे आक्षेपपूर्ण वचन सुने त्योंही मैंने कहा कि अभी हमारी देवी के केश-बन्धन का समय नहीं आया। जब तक तुम लोगों के केश बँधे हुए हैं तब तक हमारी देवी के केश खुले ही रहेंगे। तुम्हारे केश जिस दिन बिखरेंगे उसी दिन देवी के केश बाँधे जायंगे।"

बुद्धिमतिका का यह उत्तर सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही अपने हाथ का कड़ा उतार कर उसे दे दिया। फिर उन्होंने द्रौपदी को समझा बुझा कर बहुत कुछ धीरज दिया। उन्होंने कहा "तुम्हें अब और अधिक विषाद न करना चाहिए। विश्वास रक्खो, मैं बहुत जल्द अपनी इस प्रचण्ड गदा के आघात से दुर्योधन की दोनों जङ्घाओं को तोड़ दूँगा और फिर उस का खून लिपटे हुए अपने हाथों से तुम्हारे इन खुले हुए केशों को बांधूंगा।"

इस पर द्रौपदी ने कहा कि आप के लिए यह काम करना कौन सी बड़ी बात है? कुपित होने पर आप क्या नहीं कर सकते?

इतने में दुन्दुभी का बड़ा ही गम्भीर नाद सुनाई दिया। उसका कारण भीमसेन पूछ ही रहे थे कि युधि-

ष्ठिर का एक सेवक वहाँ आकर उपस्थित हुआ। उसने आकर भीमसेन से कहा कि अन्धे धृतराष्ट्र का बेटा सुयोधन बड़ा ही पापी निकला। भगवान् कृष्ण सन्धिस्थापन के विषय में बात चीत करने के लिए हस्तिनापुर गये थे। उन्हें वहाँ से कोरा लौट आना पड़ा। दुरात्मा दुर्योधन ने उनके साथ बहुत ही बुरा बर्ताव किया। उन्हें पकड़ कर बन्दी बनाने तक की उसने चेष्टा की। परन्तु भगवान् कृष्ण ने अपना उग्र वैष्णव तेज दिखा कर सारे कुरुकुल को मूर्छित कर दिया और सकुशल हमारे शिविर को लौट आये। राजा ने आप को याद किया है और मुझे आज्ञा दी है कि मैं शीघ्र ही आप को ले आऊँ।

यह सुनकर भीमसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे यह तो अवश्य जानते थे कि दुर्योधन महा मूढ़ और अविवेकी है; परन्तु यह न जानते थे कि उस में दौरात्म्य की इतनी अधिक मात्रा है कि कृष्ण भगवान् को पकड़ने की वह चेष्टा करेगा।

महाराज युधिष्ठिर का जो सेवक भीमसेन को बुलाने गया था उसने, पूछे जाने पर, बुलाने का कारण कह सुनाया। वह बोला कि महाराज को स्वाभाविक शान्ति भङ्ग हो गई है। श्रीकृष्ण के साथ दुर्योधन ने जो बुरा व्यवहार किया है उसने महाराज को बेहद क्रुद्ध कर दिया है। अब रण अनिवार्य्य है। वह सुनिए, युद्ध की घोषणा

हो गई । नक़ारा बजने लगा । द्रुपद, विराट्, वृष्णि, अन्धक आदि सेनापतियों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा हो गई । महाराज युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि इतने दिनों के बाद अब धधकी है । सत्यव्रत भङ्ग न करने की इच्छा से उसे महाराज ने अब तक मन्द कर रक्खा था । कुलक्षय न होने की कामना से उस पर वे बार बार शान्तिवारि छिड़कते रहे थे । पर क्षमा अब अपनी हद तक पहुंच गई । द्रौपदी के केशाकर्षण और श्रीकृष्ण के अपमान आदि प्रचण्ड पवन ने अब महाराज के क्रोधानल को इतना प्रज्वलित कर दिया है कि वह कुरुओं के कुलरूपी वन को जलाये बिना कदापि शान्त होने का नहीं ।

यह समाचार सुन कर भीम को परमानन्द हुआ । उन्हों ने कहा, "ईश्वर करे महाराज के क्रोध की आग और भी अधिक प्रज्वलित हो ।"

द्रौपदी को भी इस समाचार से बहुत सन्तोष हुआ। उसके मुंह का भाव बदला हुआ देख भीमसेन ने उससे कहा— "प्रिये, देख, रणरूपी यज्ञ का आरम्भ हो गया। रण की दीक्षा लिये हुए सस्त्रीक राजा युधिष्ठिर तो इस यज्ञ में यजमान हैं और हम चारों भाई याजक। भगवान् कृष्ण इस यज्ञ के आचार्य्य हैं और दुर्योधन आदि सारे कुरुकुलाधम इसके पशु हैं । उनके मारे जाने पर तेरे सारे क्लेश दूर हो जायंगे । यही इस यज्ञ का फल है।"

यह सुन कर द्रौपदी को बहुत कुछ धीरज हुआ। उसने भीमसेन से कहा—"भगवान् आप का मङ्गल करें। आप से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप सावधानी से युद्ध कीजिएगा। मेरे अपमान और मेरे निरादर को याद करके आप कहीं इतने कुपित न हो जाइएगा कि शरीर-रक्षा की कुछ परवा ही न करें। मैं सुनती हूं कि शत्रुदल बहुत प्रबल है और उसने सेना भी बहुत एकत्र की है। इसी से मैं आप से साव-धानता-पूर्वक युद्ध करने के लिए प्रार्थना करती हूं। युद्ध से लौट कर शीघ्र ही मुझे आश्वासन दीजिएगा। देरी न लगाइयेगा।"

द्रौपदी की ऐसी प्रेम-पूर्ण प्रार्थना सुनकर भीमसेन ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया। उन्हों ने कहा कि आश्वासन की बात अभी रहने दो। कुरुकुल का संहार करके ही मैं तुम्हें अपना मुंह दिखाऊंगा। यदि ऐसा न हो तो मेरी इस भेंट को तुम आख़िरी भेंट समझना। यह कह कर वे सहदेव के साथ युद्ध-स्थल की तरफ़ चल दिये।

हो गई । नक्कारा बजने लगा । द्रुपद, विराट्, वृष्णि, अन्धक आदि सेनापतियों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा हो गई । महाराज युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि इतने दिनों के बाद अब धधकी है । सत्यव्रत भङ्ग न करने की इच्छा से उसे महाराज ने अब तक मन्द कर रक्खा था । कुलक्षय न होने की कामना से उस पर वे बार बार शान्तिवारि छिड़कते रहे थे । पर क्षमा अब अपनी हद तक पहुंच गई । द्रौपदी के केशाकर्षण और श्रीकृष्ण के अपमान आदि प्रचण्ड पवन ने अब महाराज के क्रोधानल को इतना प्रज्वलित कर दिया है कि वह कुरुओं के कुलरूपी वन को जलाये बिना कदापि शान्त होने का नहीं ।

यह समाचार सुन कर भीम को परमानन्द हुआ । उन्हों ने कहा, "ईश्वर करे महाराज के क्रोध की आग और भी अधिक प्रज्वलित हो ।"

द्रौपदी को भी इस समाचार से बहुत सन्तोष हुआ । उसके मुंह का भाव बदला हुआ देख भीमसेन ने उससे कहा—"प्रिये, देख, रणरूपी यज्ञ का आरम्भ हो गया । रण की दीक्षा लिये हुए सस्त्रीक राजा युधिष्ठिर तो इस यज्ञ में यजमान हैं और हम चारों भाई याजक । भगवान् कृष्ण इस यज्ञ के आचार्य्य हैं और दुर्योधन आदि सारे कुरुकुलाधम इसके पशु हैं । उनके मारे जाने पर तेरे सारे क्लेश दूर हो जायंगे । यही इस यज्ञ का फल है ।"

दूसरा परिच्छेद।

यह सुन कर द्रौपदी को बहुत कुछ धीरज हुआ। उसने भीमसेन से कहा—"भगवान् आप का मङ्गल करें। आप से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप सावधानी से युद्ध कीजिएगा। मेरे अपमान और मेरे निरादर को याद करके आप कहीं इतने कुपित न हो जाइएगा कि शरीर-रक्षा को कुछ परवा ही न करें। मैं सुनती हूं कि शत्रुदल बहुत प्रबल है और उसने सेना भी बहुत एकत्र की है। इसी से मैं आप से साव-धानता-पूर्वक युद्ध करने के लिए प्रार्थना करती हूं। युद्ध से लौट कर शीघ्र ही मुझे आश्वासन दीजिएगा। देरी न लगाइयेगा।"

द्रौपदी की ऐसी प्रेम-पूर्ण प्रार्थना सुनकर भीमसेन ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया। उन्हों ने कहा कि आश्वासन की बात अभी रहने दो। कुरुकुल का संहार करके ही मैं तुम्हें अपना मुंह दिखाऊंगा। यदि ऐसा न हो तो मेरी इस भेंट को तुम आखिरी भेंट समझना। यह कह कर वे सहदेव के साथ युद्ध-स्थल की तरफ़ चल दिये।

महाभारत का युद्ध छिड़ गया। दोनों दलों के लाखों वीर खेत रहे। भीष्मपितामह ने पाण्डवोंके छक्के छुड़ा दिये। अन्त को श्रीकृष्ण की सहायता से अर्जुन ने भीष्म के शरीर को अपने बाणों से जर्जरित कर दिया। वे और अधिक युद्ध न कर सके और शरों ही की शैय्या पर सदा के लिए सो गये। उन के मरने पर कौरवों ने द्रोणाचार्य्य को अपना सेनापति बनाया। उन्हों ने एक ऐसे व्यूह की रचना की जिसे तोड़ कर कोई भी भीतर न जा सके। परन्तु सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने उसे तोड़ दिया। कौरवों के पक्ष के अनन्त वीरों का संहार कर के वह उस व्यूह के भीतर तक घुसता चला गया। कौरवों ने जब देखा कि अभिमन्यु को हराना या मार डालना एक वीर के लिए असम्भव है तब उन्हों ने उस के साथ अन्याय-युद्ध आरम्भ कर दिया। द्रोण, कर्ण जयद्रथ आदि अनेक वीर एक ही साथ उस पर टूट पड़े और उसे मार डाला। यह सुन कर अर्जुन को महा दुःख हुआ। उन्हों ने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं आज सूर्य्य डूबते डूबते जयद्रथ को न मार डालूं

तो स्वयं ही आग में जलकर मर जाऊंगा । बात यह थी कि यद्यपि कई सेनापतियों ने मिल कर एक ही साथ अभिमन्यु पर आक्रमण किया था तथापि उसे मारा जयद्रथ ही ने था। इसी लिए अर्जुन ने जयद्रथ ही को मारने की ऐसी कठिन प्रतिज्ञा की ।

अभिमन्यु के मारे जाने का हाल जब दुर्योधन ने सुना तब उस के आनन्द की सीमा न रही । वह फूला अङ्ग न समाया । लड़ाई के मैदान में जाकर द्रोण, कर्ण और जयद्रथ आदि को उत्साहित करने का उस ने इरादा किया । अपने पक्ष के इन वीरों का सत्कार करने की जिस समय उसके मन में इच्छा उत्पन्न हुई उस समय उस के पास विनयन्धर नामक उसका एक बहुत पुराना सेवक उपस्थित था । दुर्योधन ने उस से कहा कि आज हम लोगों के लिए यह बड़े ही आनन्द की बात है जो अभिमन्यु लड़ाई में मारा गया । न्याय से हो चाहे अन्याय से, गुप्त रीति से हो चाहे प्रकट, शत्रु को मारना बुरा नहीं । जिस तरह हो सके — चाहे अपने हाथ से चाहे और किसी के हाथ से — शत्रु का अपकार किसी न किसी तरह करना ही चाहिए । यही कारण है जो अभिमन्यु के मारे जाने पर मुझे आज इतना आनन्द हो रहा है ।

विनयन्धर ने कहा— "आचार्य्य द्रोण के लिए यह कोई कठिन काम न था । उन के शस्त्रों का प्रभाव तो आप पर विदित ही है । कर्ण और जयद्रथ की इस में

क्या तारीफ़ ? एक बात और भी है कि अभिमन्यु एक तो बालक, फिर अकेला, फिर शस्त्रहीन। जिस समय उस पर आप के महारथियों ने आक्रमण किया; उस समय उसके हाथ में धनुष भी तो न था। वह तो कट कर गिर गया था। इस से मेरी समझ में हम लोगों को आनन्दित होने और अभिमान करने की इस में कोई बात नहीं।"

दुर्योधन को विनयन्धर का यह कहना अच्छा न लगा। वह बोला—"विनयन्धर, पाण्डव हम लोगों के साथ भी तो छल, कपट और अन्याय से बाज़ नहीं आये। बूढ़े पितामह को उन्हों ने किस तरह मारा, क्या यह तुम नहीं जानते ? शिखण्डी को सामने कर के उन पर आक्रमण करना कौनसे न्याय की बात थी ? क्या वह अधर्म-युद्ध न था ? अतएव यदि पितामह को उस तरह मारने से पाण्डवों की प्रशंसा होगी तो अभिमन्यु को इस तरह मारने से हमारी भी प्रशंसा होगी।"

विनयन्धर ने प्रार्थना की कि महाराज, यदि मुझसे कुछ अनुचित निकल गया हो तो क्षमा किया जाऊं। मैं महाराज को अद्वितीय वीर समझता हूं। पराक्रम में आप की बराबरी करने वाला संसार में कोई नहीं। इसी लिए मेरे हृदय में अभिमन्यु वाली घटना कुछ खटकी।

विनयन्धर की बात सुनकर दुर्योधन खुश होगया। उसने कहा—"विनयन्धर, तुम ज़रा जाकर देख तो आओ देवी भानुमती माता गान्धारी को प्रणाम करके लौट आई

कि नहीं । उस से ज़रा मैं मिल लूं तब संग्राम-भूमि में जाकर अभिमन्यु के मारने वाले कर्ण और जयद्रथ आदि वीरों का सत्कार करूं । आज प्रातःकाल बिना मुझ से मिले ही वह उठ कर चली गई । इस कारण मेरा चित्त उद्विग्न सा हो रहा है । "

दुर्योधन की आज्ञा पाकर भानुमती को देख आने के लिए विनयन्धर उस के महलों को चल दिया ।

विनयन्धर भानुमती के महलों में गया तो उसे मालूम हुआ कि माता गान्धारी के पैर छू कर भानुमती लौट आई है और फूलबाग़ में इस लिए देवपूजा करने गई है कि युद्ध में उसके पति दुर्योधन की जीत हो।

इस पर विनयन्धर को बहुत सन्तोष हुआ। उसने मन ही मन भानुमती की बड़ी बड़ाई की।

उसने कहा कि स्त्री होने पर भी भानुमती बड़ी समझदार है। वह समझ गई है कि मेरे पति का पक्ष निर्बल है। इसी लिए देवताओं से सहायता मांगने के इरादे से उन की पूजा का अनुष्ठान किया है। वह तो इतनी समझदार और हमारे महाराज इतने नासमझ! भला देखो तो, बैठे बिठाये पाण्डवों से व्यर्थ ही लड़ाई मोल ले ली। पाण्डव सबल हों या निर्बल, कृष्ण उन के सहायक हैं। और कृष्ण की सहायता से पाण्डव क्या न कर सकेंगे? जिस दिन से हाथ में फरसा उठाया उस दिन से परशुराम किसी से लड़ाई में नहीं हारे। ऐसे परशुराम को भी हराने वाले भीष्म को जिन पाण्डवों ने शर-शैय्या पर सुला दिया उनसे विरोध मोल लेना हमारे महाराज के हक़ में अच्छा नहीं हुआ। अच्छ

विरोध किया ही था तो अपने पक्ष का बल बढ़ाने के लिए कुछ प्रयत्न तो करना चाहिए था। परन्तु सो भी नहीं। उधर तो घमासान लड़ाई चल रही है, इधर हमारे महाराज मज़े से महलों में विहार कर रहे हैं। यही नहीं, किन्तु शस्त्र-हीन बेचारे बालक अभिमन्यु के मारे जाने पर खुशी मना रहे हैं। इस नादानी का कहीं ठिकाना है!

इस प्रकार मन ही मन कुढ़ता और दुखी होता हुआ राजभक्त विनयन्धर दुर्योधन के पास लौट आया। दुर्योधन से उसने कहा कि देवी भानुमती माता को प्रणाम करके लौट आई हैं और युद्ध में आप को जिताने के लिए फूलबाग़ में कोई अनुष्ठान करने गई हैं। दुर्योधन ने उससे कहा, अच्छा तो मुझे वहीं ले चल। वहां जाने पर दुर्योधन ने भानुमती को अपनी सखी सुवदना से बातें करते दूर से देखा। इस पर दुर्योधन ने विनयन्धर को वहां से यह कह कर हटा दिया कि जा मेरे लिए तू मेरा रथ तैयार कर; मैं भानुमती से मिलकर आता हूं।

विनयन्धर के वहां से चले जाने पर दुर्योधन वहीं छिप कर भानुमती की बातें चुपचाप सुनने लगा। रात को भानुमती ने एक बहुत ही अमङ्गलसूचक स्वप्न देखा था। उसी के विषय में उस समय वह अपनी सखी से बातें कर रही थी। भानुमती को बहुत ही भयभीत और उद्विग्न देख कर उस की सखी सुवदना ने उससे पूछा :—

सुवदना—"भानुमती, तू तो प्रबल पराक्रमी महाराज

दुर्योधन की पत्नी है। तुझे एक ज़रा से स्वप्न के कारण इतना न घबराना चाहिए। स्वप्न भी भला कहीं सच्चा होता है। अनिष्टसूचक स्वप्नों का असर देवताओं की पूजाअर्चा करने और दान-दक्षिणा देने से जाता रहता है। अच्छा, बता तो सही, स्वप्न में तू ने देखा क्या था ?"

भानुमती—" यह सब सच है। परन्तु जब से मैं ने यह अशुभ स्वप्न देखा है तब से मेरा चित्त ठिकाने नहीं। भय के मारे स्वप्न भी ठीक ठीक याद नहीं आता। अच्छा सोच लूं तो बताऊं ······। हां, सुन ; मैं ने रात को देखा कि मैं प्रमद नामक उपवन में बैठी हूं। इतने में एक बड़ा तेजस्वी नकुल (नेवला) वहां पर आगया और मेरे सामने हा उसने सौ सर्प मार डाले। उस सुन्दर नकुल को देखकर मैं अत्यन्त उत्सुक हो गई। मेरा मन चंचल हो उठा और मैं इस लतामण्डप में चली आई। मेरे साथ, मेरे पीछे पीछे, वह नकुल भी यहीं आया। यहां आकर वह मेरा दुपट्टा खींचने लगा।"

भानुमती और उसकी सखी सुवदना से इस प्रकार बातें होती रहीं और दुर्योधन छिपे छिपे उन्हें सुनता रहा। पहले त भानुमती को दुखी और व्यग्र देख उसे रंज हुआ। उसने कहा, न मालूम क्या कारण है जो भानुमती इतनी उदासीन और भयभीत है। किसी बात पर वह मुझ से रूठ तो नहीं गई। अवश्य ही मुझ से कोई अपराध हो गया जान पड़ता है। इसी से आज सुबह वह उठ कर चली गई। मुझ से

आशा तक न मांगी। परन्तु जब भानुमती ने नकुल का नाम लिया और यह कहा कि मैं उसको देखकर उत्सुक हो उठी तब दुर्योधन का जी जल उठा। उसने मन ही मन कहा कि यह तो बड़ी ही कुलटा निकली जो मेरे शत्रु, माद्री के छोटे पुत्र, नकुल पर मोहित हो गई। मैं तो इसे आज तक महा पतिव्रता समझता था। पर यह मेरी भूल थी। इसने मेरे साथ विश्वासघात किया। मुझे इससे कभी ऐसी आशा न थी। यह कुलकलङ्किनी अपना कलङ्क निःशङ्क अपनी सखी से कह रही है। इसे लज्जा भी नहीं! हाय! मैं ने इस भुजङ्गिनी को अपना प्रेमपात्र बनाकर भारी धोखा खाया। यहां तक तो दुर्योधन ने भानुमती को मनही मन धिक्कारा। पर जब उसने भानुमती को यह कहते सुना कि नकुल ने मेरी छाती पर पड़ा हुआ दुपट्टा खींच लिया तब दुर्योधन की क्रोधाग्नि तलवे से सिर तक जा पहुंची। क्रोध से वह काँपने लगा। उस ने कहा, पहले मैं माद्री के पुत्र उस व्यभिचारी नकुल का ही सिर काट लूंगा। पीछे इस दुश्चरित्रा की ख़बर लूंगा।

दुर्योधन मन ही मन नकुल के मारने और भानुमती को भी उसके किये का फल चखाने का निश्चय कर ही रहा था कि भानुमती ने अपने दुःस्वप्न का अन्तिम अंश अपनी सखी से इस प्रकार कहा :—

"बस दुपट्टा खींचने तक की घटना हो चुकने पर प्रातः काल हो गया और महाराज को जगाने के लिए बन्दीजनों के आए गाये गये गीतों को सुन कर मैं जाग पड़ी"।

यह सुनते ही दुर्योधन के सिर पर से एकदम बोझ सा उतर गया। वह कह उठा—"अरे यह तो स्वप्न की बात कह रही थी। खैर हुई जो मैं ने प्रकट होकर इसे कुछ भला बुरा नहीं कह डाला।" यह जान कर भी कि जिस घटना का वर्णन भानुमती ने अपनी सखी से किया केवल स्वप्न की बात थी। दुर्योधन के हृदय में भय का संचार हो आया। उसने मन में कहा— "नेवले को स्वप्न में देखना अच्छा नहीं। ऐसा स्वप्न अमङ्गलजनक होता है"। भानुमती के स्वप्नदृष्ट नेवले ने सौ साँप मार डाले थे और दुर्योधन के भी सब भाई मिला कर सौ थे। यह बात दुर्योधन को और भी खटकी। पर वह स्वभाव ही से अविवेकी और हठी था। इस तरह की अमङ्गल भावना उसके मन में आई सही; पर आने के साथ ही वह न मालूम कहां चली गई। उसने तत्काल ही यह कह कर अपने मन को समझा दिया कि ऐसे स्वप्नों की परवा मूर्ख और कायर पुरुष ही किया करते हैं। वीरों के हृदय पर स्वप्नों का असर नहीं होता। अतएव दुर्योधन उस से डरने वाला नहीं।

पाँचवाँ परिच्छेद

नुमती से स्वप्न का समाचार सुन कर उस की सखी भी सहम गई। उस ने भी उस स्वप्न को अशुभदायक समझा। रानी के पूछने पर उस ने अपने मन की बात सच सच कह दी। साथ ही उसने यह भी कहा कि रानी साहबा, घबराइए नहीं। देवताओं की पूजा, वेद-पाठ और ब्राह्मणों के आशीर्वाद से दुःस्वप्नों की शान्ति हो जाती है। आप भी वही कीजिएगा।

इतने में प्रातःकालीन सूर्य्य की लाल लाल किरणें सर्वत्र छिटकी हुई देख पड़ीं। उन्हें देख कर पति की कुशलकामना से भानुमती ने सूर्य्य को अर्घ्य देना चाहा और सखी से जल तथा अर्घा माँगा। अर्घे में जल डाल कर सखी से भानुमती ने कहा कि मैं अर्घ्य देती हूं, तू अर्घे के जल में फूल डालती जा। इस मौके को अच्छा समझ दुर्योधन भानुमती के पीछे आ कर खड़ा हो गया और इशारे से सखी को अलग हटा कर आपही भानुमती के अर्घे में फूल डालने लगा। उस ने जान बूझ कर कुछ फूल ज़मीन पर गिरा दिये। फूल डालते समय उस के

हाथ का धक्का भी भानुमती को लगा। इस पर वह अपनी सखी पर झुँझला उठी और पीछे की तरफ़ गर्दन मोड़ कर जो देखा तो दुर्योधन को खड़ा पाया।

दुर्योधन बोला—"प्रिये, इस दासने ऐसा काम कभी पहले नहीं किया। उसे इस का अभ्यास नहीं। इसी से फल ज़मीन पर गिर पड़े। क्षमा कर।" इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करके वह भानुमती से प्रेमपूर्ण बातें करने लगा।

भानुमती ने कहा—"महाराज, मैं ने पूजनसम्बन्धी एक व्रत करने का निश्चय किया है। उसकी पूर्ति हो जाने दीजिए। ऐसा कोई काम न कीजिए जिससे मेरा नियम भङ्ग हो जाय।" पर दुर्योधन ने उसकी बात न मानी। उसने कहा, मैं ने तुम्हारे स्वप्न का सारा हाल छिपे छिपे सुन लिया है। तुम्हारा भय अकारण है। डरने की कोई बात नहीं। महर्षि अङ्गिरा ने अपनी स्मृति में लिखा है कि दुःस्वप्न और ग्रहों के शुभाशुभ फलों पर समझदार आदमी को विश्वास न करना चाहिए। फिर एक बात और भी है। क्या मैं पाण्डवों से सब प्रकार अधिक बली नहीं? मेरी अनन्त सेना का पराक्रम क्या तू नहीं जानती? कर्ण और द्रोण के बाणों की करामात क्या तुझ से छिपी है? मेरे और मेरे ९९ भाइयों के भुजबल का हाल क्या तुझे ज्ञात नहीं? दुर्योधन जैसे वीर-पुङ्गव और राजसिंह की पत्नी होकर अनिष्ट शङ्का करना तुझे शोभा नहीं देता।

भानुमती ने कहा—"आप के रहते मुझे कुछ भी शङ्का या सन्देह नहीं । मैं केवल आप की मनोरथ-सिद्धि की आकांक्षा रखती हूँ ।" यह सुनकर दुर्योधन को बहुत सन्तोष हुआ । उसने कहा—"यही बात है तो मेरा मनोरथ तुम्हारे साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करने का है । उसी की सिद्धि के लिए तुम तैयार हो जाव ।"

बस फिर क्या था, भानुमती का व्रत भङ्ग हो गया और दुर्योधन उसके साथ मीठी मीठी बातें करने लगा ।

इतने में अकस्मात बड़े ज़ोर से आँधी आई । पेड़ उखड़ने लगे । डालियाँ टूटने लगीं । धूल बेतरह उड़ने लगी । इससे भानुमती डर गई और राजा का हाथ पकड़ कर रक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगी । दुर्योधन तो यही चाहता था । वह भानुमती को लेकर पास ही बाग़ के बंगले में चला गया । वहां भानुमती के साथ हास-परिहास और अनुनय-विनय करने लगा ।

उसी समय विनयन्धर, जिसको दुर्योधन ने अपना रथ सजाने के लिए भेजा था, वहां हाँफता हुआ उपस्थित हुआ और "तोड़ दी", 'तोड़ दी" कह कर चिल्लाने लगा । इस पर दुर्योधन ने रुष्ट होकर पूछा—"अरे ! पागल की तरह 'तोड़ दी', 'तोड़ दी' क्या बक रहा है ? किसने तोड़ दी और क्या तोड़ दी ? कुछ बतावेगा भी ?"

विनयन्धर बोला—"महाराज, भीम ... ... ।" इस पर दुर्योधन ने फिर उसे फटकार बताई और क्या बात है सो

साफ़ साफ़ कहने के लिए उससे कहा।

विनयन्धर ने निवेदन किया कि देव, भीम विक्रम से चली हुई आंधी ने आपके रथ की पताका तोड़ दी। उसमें जो घुंघुरू लगी थीं उनकी ध्वनि के बहाने रोती हुई वह ज़मीन पर गिर पड़ी।

दुर्योधन बोला—"जिस आंधी ने बड़े बड़े पेड़ों को जड़ से उखाड़ दिया उसने यदि मेरे रथ की पताका तोड़ दी तो घबराने और आश्चर्य्य करने की बात ही क्या है?"

विनयन्धर ने प्रार्थना की कि महाराज, पताका गिरने को मैं ने अशुभ समझा। इसी से स्वामिभक्ति की प्रेरणा से मैं ने उस के गिरने का हाल आप से कह सुनाया। यदि इस अशकुन की शान्ति के लिए कुछ पूजा-पाठ करा दी जाय तो बहुत अच्छा हो।

भानुमती ने भी विनयन्धर की इस बात का अनुमोदन किया। उसने ब्राह्मणों के द्वारा वेद-पाठ और हवन-पूजन आदि शीघ्र ही करा कर इस अनिष्टसूचक घटना के बुरे परिणाम की शान्ति के लिए दुर्योधन से दृढ़तापूर्वं प्रार्थना की। दुर्योधन ने यद्यपि इस घटना को ज़रा भी महत्व न दिया और उसे बड़ी ही अवज्ञा की दृष्टि से देखा तथापि भानुमती को प्रसन्न करने के लिए विनयन्धर से सिर्फ़ यह कह दिया कि जा, पुरोहित सुमित्रो से इस विषय में बात चीत कर के जो कुछ मुनासिब हो करा डाल।

दुर्योधन की यह आज्ञा सुन कर उस के पालन के लिए

विनयन्धर वहां से चल दिया।

इतने में एक और घटना हुई। दुर्योधन की बहिन का नाम दुःशला था। वह जयद्रथ को ब्याही थी। उसने और जयद्रथ की माता ने अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार जो सुन पाया तो उनके होश उड़ गये। रोती पीटती हुई वे दुर्योधन के पास फूलबाग़ के उसी बंगले में दौड़ी आईं जहां भानुमती के साथ दुर्योधन आनन्द से बैठा हुआ था। उन के आने की ख़बर सुनते ही दुर्योधन को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि अभिमन्यु के मारे जाने से रुष्ट हुए पाण्डवों ने जयद्रथ का कुछ अनिष्ट तो नहीं कर डाला। उसने शीघ्र ही उन दोनों को भीतर बुला लिया। आते ही वे दुर्योधन के पैरों पर गिर पड़ीं और बचाइए, बचाइए, कह कर ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगीं।

दुर्योधन ने पूछा—"बात क्या है? क्यों इतना रोती पीटती हो? महाबली जयद्रथ कुशल से तो हैं?"

जयद्रथ की माता ने कहा—"बेटा, कुशल कहां? पुत्र के मारे जाने से गाण्डीवधारी अर्जुन क्रोध से पागल हो उठा है और यह प्रतिज्ञा की है कि आज सूर्य्यास्त होने के पहले ही मैं जयद्रथ को मार डालूंगा।"

यह सुन कर दुर्योधन हंसने लगा। वह बोला—"अरे, इसी से क्या तुम और दुःशला रोती हो? अब मत रोओ; धैर्य्य धरो। पुत्रशोक के कारण अर्जुन के होश हवास ठिकाने नहीं। प्रलाप की अवस्था में उस ने यह प्रतिज्ञा बक डाली

है। जिस जयद्रथ की रक्षा का भार दुर्योधन की बलवती बाहुओं पर है उस पर कदापि कोई संकट नहीं आ सकता। क्या तुमने पाण्डवों की, की हुई पहली प्रतिज्ञाओं का हाल नहीं सुना? दुःशासन का रक्त पीने और दुर्योधन की जङ्घा तोड़ने की प्रतिज्ञा भी तो इन्हीं पाण्डवों ने की थी। फिर वह व्यर्थ हो गई या नहीं? जैसे उनकी वे प्रतिज्ञायें व्यर्थ हो गईं वैसे ही यह भी व्यर्थ हो जायगी। इन बकवादियों की प्रतिज्ञा को तुम प्रतिज्ञा ही न समझो। उन्मत्त मनुष्य जैसे मनमाना प्रलाप किया करता है वैसे ही ये भी, जैसा मुंह से निकलता है, कह डालते हैं।"

जयद्रथ की माता ने कहा—"पुत्र, यह तो तुम ठीक कहते हो। परन्तु अपने आत्मीय जनों का नाश होने पर वीरों के क्रोध की सीमा बहुत बढ़ जाती है। उस दशा में अपने प्राणों की भी परवा न कर के वे कभी कभी बड़ा ही अद्भुत पराक्रम और साहस कर दिखाते हैं। क्रोध बढ़ जाने से ऐसा होना असम्भव नहीं।"

जयद्रथ की माता की इस बात को भी दुर्योधन ने हंसी में उड़ा दिया। उसने कहा कि पाण्डवों के क्रोध का हाल तुम्हें शायद नहीं मालूम। परन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम है। मेरी आज्ञा से दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी के केश खींचे। उस की साड़ी तक खींच ली। उस का अपमान किया। उस से अनेक प्रकार की हंसी दिल्लगी की। तब इन पाण्डवों का क्रोध कहां गया था? गाण्डीव लिए हुए अर्जुन क्या
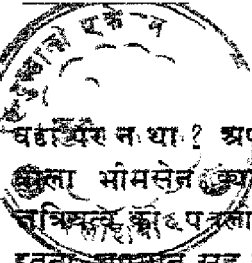
वहां पर न था? अपने को बहुत बड़ा वीर और बली समझने वाला भीमसेन क्या वहां पर न था? जिस क्षत्रिय में क्षत्रियत्व की एक बूंद सी भी रक्तधारा बहती होगी वह क्या इतना अपमान सह कर भी चुप बैठा रहेगा? क्या उसे क्रोध न आवेगा? परन्तु इन लोगों से न उस समय ही कुछ करते धरते बना और न उसके बाद ही। यही इनके क्रोध का हाल है!"

इस पर जयद्रथ की माता ने निवेदन किया कि अर्जुन ने यह भी प्रतिज्ञा की है कि यदि आज मैं जयद्रथ को न मार डालूं तो खुद ही आग में जल कर मर जाऊंगा।

दुर्योधन बोला—"लो, तो फिर क्या कहना है! फिर तो बिना परिश्रम ही के हम लोगों का कार्य्य सिद्ध हुआ समझो। हम सौ भाइयों और कर्ण, द्रोण आदि प्रबल पराक्रमी वीरों के रहते किस में सामर्थ्य है कि तुम्हारे पुत्र का बाल भी बांका कर सके? तुम अपने पुत्र का पराक्रम नहीं जानतीं। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव में से एक भी उसका सामना नहीं कर सकता। रहे अर्जुन और भीमसेन, सो जिस समय महाबली सिन्धुराज अपने मण्डलाकार धनुष से बाण-वर्षा करने लगेंगे उस समय उन दो में से एक भी उन के आक्रमण को क्षण भर भी न सह सकेगा। अतएव तुम निःशङ्क घर बैठी रहो। लो, मैं भी तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए संग्रामभूमि में जाता हूं। मेरे पहुंचने ही की देरी है; अर्जुन की प्रतिज्ञा भङ्ग हुई ही समझो। उसे सचमुच ही आत्म-हत्या करनी पड़ेगी। है कोई? मेरा रथ तुरन्त ले आओ।"

विनयन्धर इस के पहले ही रथ ला चुका था। उस पर सवार होकर दुर्योधन तो लड़ाई के मैदान में गया और दुःशला और जयद्रथ की माता अपने घर गईं।
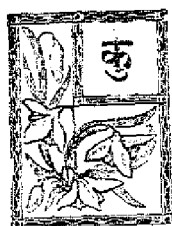
रुक्षेत्र में महाभारत मचते कई दिन हो चुके । अब तक लाखों नहीं, करोड़ों सुभट काम आ चुके हैं । कितने ही रथी और महारथी भी स्वर्ग को सिधार चुके हैं । राक्षसों, भूतों और पिशाचों की खूब ही बन आई है । महीनों के भूखों की भूख और प्यासों की प्यास इस युद्ध ने बुझा दी । आज मांसभोजी और रुधिर-पायी पिशाचों के आनन्द का ठिकाना नहीं । वसागन्धा नामक राक्षसी के मुख से ज़रा इन लोगों का कुछ हाल तो सुन लीजिए ।

वसागन्धा—"आहा ! हम लोगोंके लिए क्या ही सौभाग्य का समय है । जिस दिन से कौरवों और पाण्डवों का युद्ध शुरू हुआ उसी दिन से हमारी पांचों उंगलियां घी में हैं । मनुष्यों का हज़ारों मन मांस और सैकड़ों घड़े खून आज तक मैं ने इकट्ठा कर लिया है । ईश्वर करे, यह युद्ध हज़ारों वर्ष तक इसी तरह बराबर होता रहे । जिस दिन जयद्रथ मारा गया उस दिन अर्जुन ने कौरवों की सेना पर बेतरह हाथ साफ किया । उन के गाण्डीव धनुष की टंकार ऊपर आकाश और नीचे पाताल तक व्याप्त होगई । असंख्य वीरोंको अपने बाणों से काट काट

कर ज़मीन पर उन्हों ने इस तरह बिछा दिया जिस तरह कि किसान गेहूं की लांक काट काट कर बिछा देते हैं। वीरों के रक्त, मांस और चर्बी में हमलोगों के घर चावल चावल भर गये। अब कहीं तिल भर भी जगह खाली नहीं। फिर भी ढेर के ढेर मुर्दे लड़ाई के मैदान में पड़े हुए हैं। अब मुझे भूतों और पिशाचों से ख़बरदार रहना चाहिए और भेड़ियों तथा गीदड़ों पर भी कड़ी नज़र रखनी चाहिए। नहीं तो ये मेरे घर पर डाका डाले बिना न रहेंगे। देखो, दूर, एक बहुत बड़े पिशाच की आवाज़ सुनाई दे रही है। मुझे डर लग रहा है कि ऐसा न हो जो वह मुझे निर्बल समझ मेरे मकान पर टूट पड़े और रुधिर के दो चार घड़े पी जाय या मन दो मन मांस ही खा जाय। ऐसे समय में मेरा प्यारा पति रुधिरप्रिय न मालूम कहां चला गया। ओ रुधिरप्रिय! ओ रुधिरप्रिय!"

रुधिरप्रिय—"प्रिये, इतना घबराने का क्या कारण? मैं आ गया। अरी, मेरी स्वामिनी हिडिम्बा देवी इस समय बहुत व्याकुल हो रही है। तू ने शायद नहीं सुना कि उनका प्यारा पुत्र घटोत्कच युद्ध में मारा गया। इसी से मैं उन के यहां गया था। वहीं से अभी चला आ रहा हूं। मैं बहुत थका हूं। थोड़ा सा गरम गरम खून तो मुझे पिला दे, जिससे मेरी थकावट दूर हो जाय।"

वसागन्धा—"जो तू इस समय भी भूखा और प्यासा रहा तो तेरी भूख-प्यास की शान्ति शायद ही कभी हो। अरे, इस

समय भी मांस और रुधिर की कमी ? ले, गरम गरम खून के ये दस घड़े हैं। पी ले। यह एक बहुत बड़े क्षत्रिय वीर का पूरा मन भर मांस है। खा ले। लाखों वीर, लाखों हाथी, लाखों घोड़े अब तक मर चुके। रुधिर की नदियां बह निकलीं। मांस का कीचड़ हो रहा है। फिर भी तू मरभुक्खे की जैसी बातें कर रहा है। "

रुधिरप्रिय—"प्रिये वसागन्धा, शाबाश ! तेरी कृपा से मेरी प्यास बुझ गई। भूख भी जाती रही। मैं यदि हिडिम्बा देवी के यहां न चला जाता तो रुधिर और मांस इकट्ठा करने में तेरी अवश्य सहायता करता। अच्छा, यह तो बतला कि किन किन वीरों का कितना कितना रुधिर मांस तू ने इकट्ठा किया है ? "

वसागन्धा—" सुन, मैं ने खाने पीने का इतना सामान इकट्ठा कर लिया है—भगदत्त का रक्त एक घड़ा; जयद्रथ की चर्बी दो घड़े; विराटराज, भूरिश्रवा, सोमदत्त और बाल्हीक-नरेश आदि बड़े बड़े सैनिकों का मांस दो दो घड़ा। इसके सिवा छोटे बड़े अन्य रथियों और महारथियों के मांस और रक्त से एक हज़ार घड़े भर रक्खे हैं। "

रुधिरप्रिय—"खूब किया। मैं तुझ पर बहुत ही खुश हुआ। अच्छा अब मुझे जाने दे। स्वामिनी हिडिम्बा देवी ने आज्ञा दी है कि आज तू लड़ाई के मैदान में भीमसेन के पीछे पीछे घूम क्योंकि महाबली वृकोदर ने दुःशासन का रुधिर पीने की घोर प्रतिज्ञा की है। सो जिस समय वे दुःशा-

दय विदीर्ण करें उस समय तू ही स्वामी के शरीर
करके उस रुधिर को पी लेना। ”
कह कर रुधिरप्रिय समरभूमि की ओर प्रस्थान
इधर उसकी प्रियतमा वसागन्धा रक्त, मांस और
ण करने में लग गई।
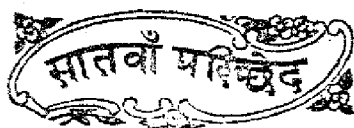
र्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। सूर्यास्त
होने के पहले ही उन्होंने जयद्रथ को मार
डाला। पाण्डवों के पक्ष के एक योद्धा ने
हाथ कटे हुए भूरिश्रवा का भी सिर काट
दिया। इससे कौरवों की सेना में हा हा
कार मच गया। अपने दल का पराभव
होता देख कौरवों के सेनापति द्रोणाचार्य
बेतरह कुपित हो उठे। उन्होंने पाण्डवों
का संहार आरम्भ कर दिया। लोथों पर लोथें
गीं। थोड़ी ही देर में पाण्डवों की असंख्य सेना
। बड़े बड़े वीर त्राहि त्राहि कहते हुए भागने
पाण्डवों ने सोचा कि यदि आचार्य द्रोण इसी
नष्ठुरतापूर्वक देर तक युद्ध करते रहेंगे तो हमारी

सेना में एक भी वीर जीता न बचेगा । इससे उन्होंने एक कुटिल नीति का आसरा लेना चाहा । उन्होंने कहा कि आचार्य्य द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा को प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं। यदि अश्वत्थामा के मरने की झूठी ख़बर उड़ा दी जाय तो वे निश्चय ही हाथ से हथियार डाल देंगे । उनके ऐसा करने से हम लोग उन्हें सहज ही में मार सकेंगे । यह सलाह किसी को अच्छी लगी, किसी को न अच्छी लगी, परन्तु अन्त में इसी के अनुसार काम करने की ठहरी ।

युधिष्ठिर बड़े सत्यवादी थे। वे कभी झूठ न बोलते थे । सभी लोग उनकी सच्चाई के क़ायल थे । इस से उन्हीं से कहा गया कि तुम्हीं यह झूठी ख़बर द्रोणाचार्य्य को सुनाओ । सेना में अश्वत्थामा नाम का एक हाथी भी था । सलाह हुई कि युधिष्ठिर पहले तो द्रोण को ज़ोर से सुना कर यह कहें कि अश्वत्थामा मार डाला गया, पीछे से 'हाथी' शब्द इतना धीरे से कहें कि द्रोणाचार्य्य न सुन सकें । बात यह थी कि अश्वत्थामा नाम का हाथी तो ज़रूर मारा गया था । पर द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा जीते थे । इसी से अश्वत्थामा नामक हाथी के मारे जाने की ख़बर इस तरह उड़ाने की ठहरी, जिसमें द्रोण को असल हाल न मालूम हो। वे यही समझें कि मेरा पुत्र मारा गया। युधिष्ठिर ने बहुत कुछ पसोपेश के बाद सलाह के अनुसार अश्वत्थामा के मरने की

ख़बर उड़ाई। द्रोणाचार्य ने पुत्र के मारे जाने की ख़बर सुनते ही हथियार फेंक दिये और पुत्रशोक से विह्वल होकर बिना हाथ पैर हिलाये रथ पर चुपचाप बैठे रह गये। इसी दशा में राजा द्रुपद के बेटे धृष्टद्युम्न ने उन का सिर काट लिया।

द्रोण के मरते ही कौरवों की सेना पर मुर्दनी छा गई। वे अत्यन्त निराश हो गये। इधर अर्जुन और भीमसेन ने सिंहनाद करके कौरवों की सेना पर बड़े ही भीम विक्रम से आक्रमण किया। तब कौरवों की सेना लड़ाई के मैदान से भाग चली। जिसे जिधर राह मिली वह उधर ही जी लेकर भागा। अश्वत्थामा को अब तक पिता के मरने की कुछ भी ख़बर न थी। उन्होंने जो कौरव वीरों को इधर उधर भागते देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। सेना के तुमुल नाद को सुन कर पहले उन्होंने यह सोचा कि मेरे पिता ही के प्रचण्ड पराक्रम से पीड़ित हुई पाण्डव-सेना का यह हाहाकार शब्द है। उन्होंने समझा कि यद्यपि अर्जुन और भीमसेन आदि मेरे पिता के शिष्य हैं, तथापि युद्ध में पिता का सामना करने के कारण पिता ने सारी ममता छोड़ कर उन्हें पीड़ित करना आरम्भ किया है। इसी से कानों के परदे फाड़ने वाला यह व्योमव्यापी नाद सेना-समूह में हो रहा है। परन्तु जब उन्होंने अपने ही पक्ष के कर्ण आदि बड़े बड़े वीरों को भागते देखा तब उनके आश्चर्य की सीमा न

रही। उन्होंने कहा—"अरे मामला क्या है! ये बड़े बड़े वीर, क्षत्रियों के धर्म्म को तिलाञ्जलि देकर, अपने स्वामी के सत्कारों को भूलकर और हाथियों, रथों और घोड़ों को छोड़ कर, इस तरह घबड़ाये हुए क्यों भाग रहे हैं! पिताजी से रक्षित होने पर मेरे पक्ष की सेना की यह अवस्था!" तब भागते हुये वीरों को बड़े ज़ोर से ललकार कर वे बोले:—

"अरे मूर्खों! क्षत्रियों का काम प्राण लेकर भागना नहीं। यदि तुम्हें यह विश्वास होता कि भागने से फिर तुम्हें कभी मृत्यु न आवेगी तो बात दूसरी थी। परन्तु जब एक न एक दिन अवश्य मरना है तब इस तरह समर-भूमि से भाग कर क्यों अपने यश को कलङ्कित कर रहे हो? क्या तुम्हें क्षत्रिय होने का ज़रा भी अभिमान नहीं? समर-भूमि से भाग कर क्या तुम अब अपने को अमर समझते हो? क्या इस तरह भागते तुम्हें ज़रा भी लज्जा नहीं आती? धिक्कार है तुम्हारी इस कायरता पर! मेरे पूज्य पिता के जीते रहते तुम्हारा इस तरह भयभीत होकर भागना बड़ी ही लज्जा की बात है।"

इतने ही में अश्वत्थामा के पिता आचार्य्य द्रोण का सारथी अश्वसेन वहां आकर उपस्थित हुआ और बोला—"कुमार, आप के पिता अब कहाँ!" अश्वसेन की बात पर अश्वत्थामा को विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा कि यह कदापि सम्भव नहीं। अभी प्रलय तो हुआ नहीं। आकाश में

प्रलयकाल की घनघोर वर्षा तो हुई ही नहीं । बारहों सूर्यों ने एक ही साथ उदित होकर सारे संसार को जलाया ही नहीं । फिर इन सब बातों के हुए बिना प्रलय-काल का दृश्य उपस्थित हुए बिना मेरे पिता कैसे इस संसार को छोड़ सकते हैं ? इस पर अश्वसेन ने उन्हें इस समाचार के सच होने का विश्वास दिलाया । सुनते ही अश्वस्थामा का हृदय दुःख से अभिभूत हो गया । वे मूर्च्छित हो कर ज़मीन पर गिर गये । कुछ देर में होश आने पर उन्होंने बड़ा ही हृदयद्रावक विलाप करना आरम्भ किया । सारथी के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर जब वे कुछ स्वस्थ हुए तब उन्होंने अश्वसेन से पूछा—

"अश्वसेन, यह पुण्य कार्य किस पुण्यात्मा के हाथ से हुआ ? क्या भीमसेन ने गुरुदक्षिणा के रूप में मेरे पिता पर अपनी गदा का आघात किया ? अथवा क्या धनञ्जय ने मेरे दयामय पिता को पञ्चत्व को पहुंचाया ? अथवा क्या कृष्ण ने अपने चक्र से उनका प्राण हरण किया ?"

सारथी बोला—"कुमार, यह कुछ नहीं हुआ । आप के पिता ने अपने शौर्य और वीर्य से पाण्डवों को नाकों चने चबवाये । समर-भूमि में उन्होंने सचमुच ही प्रलय-काल का दृश्य उपस्थित कर दिया । जब तक उन के हाथ में शस्त्र रहा पाण्डवों की सेना का एक भी वीर उनके सामने पल भर भी न ठहर सका । परन्तु

पाण्डवों ने जब आप के मरने की झूठी ख़बर उड़ाई तब आचार्य्य ने शोक-सन्तप्त होकर हाथ से हथियार फेंक दिये। उसी दशा में द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने उन का सिर काट डाला।"

यह सुनते ही अश्वत्थामा का शोक सौ गुना अधिक हो गया। "हाय! मेरे लिए पिता ने प्राण छोड़ दिये। मैं बड़ा ही अभागी हूं। हाय! मैं बड़ा ही कृतघ्न हूं, जो ऐसे सुतवत्सल पिता का मृत्युसंवाद सुन कर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं होता। सचमुच यह युधिष्ठिर बड़ा ही नीच है। जिसने आज तक कभी झूठ न बोला था, जिसने अपने उत्तम गुणों के कारण अजातशत्रु नाम पाया था, उसी ने मेरे दुर्भाग्य से अपने गुरू के साथ ऐसा सलूक किया!!!"

इस प्रकार विलाप करते और पाण्डवों को धिकारते बड़ी देर तक अश्वत्थामा विकल और विह्वल रहे। उन को अत्यन्त दुःखित और शोक-सन्तप्त देख उनके मामा कृपाचार्य्यजी उनकी सान्त्वना करने के लिए आ गये। वे भी बहुत देर तक रोते-धोते और कौरवों तथा पाण्डवों को धिकारते रहे। उन्होंने कहा—

"इस युद्ध का परिणाम कदापि अच्छा होने का नहीं। हाय! जिन लोगों ने सभा में द्रौपदी के बाल खींचे जाने का हृदयविदारक दृश्य चुप चाप बैठे हुए देखा था उन्होंने आज शस्त्रहीन आचार्य्य के भी केश खींचे जाते देखे,

पर किसी ने उंगली तक न उठाई। उनकी इस निर्लज्जता का भी कहीं ठिकाना है! द्रौपदी के केशाकर्षण के कारण ही यह घोर संग्राम होने की नौबत आई। अब आचार्य्य के केशाकर्षण के कारण नहीं मालूम क्या होने वाला है। जान पड़ता है, अब सारी प्रजा ही का संहार हो जायगा।"

कृपाचार्य्य को देख कर अश्वत्थामा का शोक दूना हो गया। उन्होंने कहा—"जिन पिता जी के साथ रण में आप पधारे थे, जिनके सामने होते ही बड़े बड़े वीरों तक का कलेजा काँप उठता था, जो आप के साथ सदा हास्य-विनोद किया करते थे, हाय! वे कहाँ गये? मैं अब उनके बिना एक घड़ी भी जीता नहीं रह सकता। उन का वियोग मुझे अत्यन्त ही दुःस्सह हो रहा है। इससे मैं अब शीघ्र ही शरीर छोड़ कर उन से मिलने जाना चाहता हूं।"

यह कहकर उन्होंने अपने शस्त्रों को प्रणाम किया और उन से कहा—"तुम्हारे ही कारण लोक में पिता की इतनी प्रसिद्धि हुई थी। मेरे वियोग के कारण शोकसागर में मग्न हो कर पिता ने तुम को रण में रख दिया। अतएव मैं भी अब तुम्हें छोड़ दूंगा।"

कृपाचार्य्य ने अश्वत्थामा से कहा कि जब तक यह संसार है तब तक जीवन मरण की परम्परा छूटने की नहीं। तुमको चाहिए कि इस समय वीरों का ऐसा व्य-

वहार करो। जिन लोगों ने तुम्हारे पिता का अपमान किया है उनको दंड दिये बिना कायरों की तरह शरीर छोड़ देना तुम्हारा धर्म्म नहीं। क्षत्रियों के गुरु ब्राह्मण-श्रेष्ठ-आचार्य द्रोण के सफ़ेद बालों को जिस नृशंस धृष्टद्युम्न ने अपने हाथों से खींचकर उनका सिर काट डाला उस को यदि तुम उस के पापकर्म्म का बदला न दोगे तो संसार तुम्हें क्या कहेगा ? उसके क्रूर कर्म्म का बदला देने ही से तुम्हारे पिता की आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी। अतएव अपनी विह्वलता एक दम दूर कर दो। तलवार को फिर हाथ से उठाओ और समर-क्षेत्र में उतर कर पिता का अपमान करने वालों को उनके पाप का प्रायश्चित्त कराओ।"

यह सुनते ही अश्वत्थामा में फिर वीरभाव का उदय हो आया। आंखें क्रोध से लाल हो गईं। शरीर उनका कांपने लगा। अपना दाहना पैर पृथ्वी पर पटक कर उन्होंने कहा कि मैं पापी धृष्टद्युम्न के सिर पर लात मारे बिना किसी तरह न रहूंगा। पिता का पवित्र सिर स्पर्श करने वाले उस पाञ्चाल-कुल-कलंक को उसके दुष्कर्म्म का फल चखाये बिना शरीर छोड़ देना सचमुच ही मेरे लिए अनुचित है। अपने पिता का सिर काटने वाले सहस्रार्जुन से बदला लेने के लिए परशुराम ने जिस तरह उस का सिर काट कर उसी के रक्त से पिता का तर्पण किया था उसी तरह मैं भी धृष्टद्युम्न के रुधिर से पिता का तर्पण

कर के उनकी आत्मा को शान्ति-दान करूंगा। यह कह कर उन्होंने युद्ध के सामान से सजा हुआ रथ तत्काल ही ले आने के लिए अपने सारथी को आज्ञा दी।

अश्वत्थामा में इस प्रकार शौर्य्य का आवेश आया देख कृपाचार्य्य को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने कहा—"कुमार, तुमने जो कुछ कहा, बहुत ठीक कहा। ऐसे समय में तुम्हें ऐसा ही वीरोचित व्यवहार करना चाहिए। मुझे यह देखकर बहुत ही संतोष हुआ कि तुमने मेरा कहना मान लिया। एक बात और भी मैं चाहता हूं। वह यह है कि अब तुम्हीं कौरवों के सेनापति होकर अपने पक्ष का इष्ट-साधन करो। भीष्म और द्रोण के अनन्तर तुम्हीं इस पद के सर्वथा योग्य हो। मुझे विश्वास है कि सेनापति के पद पर अभिषिक्त करने के लिए दुर्योधन इस समय तुम्हारी अवश्य ही राह देख रहे होंगे।"

अश्वत्थामा ने सेनापति होना स्वीकार किया। फिर कृपाचार्य्य और वे, दोनों ही, दुर्योधन के डेरों की तरफ़ रवाना हुए।
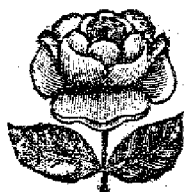
आठवाँ परिच्छेद

द्रोणाचार्य्य का युद्ध में हथियार रख देना दुर्योधन को बहुत खटका। उसने अङ्गराज कर्ण से कहा कि जिनके बन्धु बान्धव और इष्टमित्र युद्ध में मारे जा रहे हों उन्हें तो और भी क्रुद्ध होकर शत्रुओं का संहार करना चाहिये। शस्त्र डालकर चुपचाप बैठ रहना उनका काम नहीं। पुत्र की मृत्यु वार्ता सुनकर आचार्य्य को चाहिये था कि वे और भी घोर युद्ध करते। फिर, नहीं समझ पड़ता कि क्यों उन्होंने हाथ से आयुध फेंक दिये। मैं तो इसका कारण यही समझता हूं कि ब्राह्मण स्वभाव ही से कोमल-हृदय होते हैं। इसीसे आचार्य्य ने पुत्र-शोक से सन्तप्त होकर क्षत्रियों के कठिन धर्म्म को छोड़ दिया और ब्राह्मणोचित कोमलता को हृदय में स्थान दिया।

कर्ण ने कहा—"बात कुछ और ही है। द्रोणाचार्य्य का अभिप्राय यह था कि अश्वत्थामा को सारी पृथ्वी का स्वामी बना दूं। इसी लिए वे कौरवों और पाण्डवों के पक्ष के राजाओं का मारा जाना चुप चाप देखा किये। जयद्रथ को अभयदान देकर भी उसकी

रक्खा उन्होंने न था । ये सब बातें उनके उसी गूढ़ आशय को पुष्ट करती हैं । उनका यह अद्भुत भाव द्रुपदराज ने ताड़ लिया था । इसीसे तो उन्होंने द्रोण को क्षत्रियद्वेषी समझ कर अपने राज्य में नहीं रहने दिया । जब अश्वत्थामा की मृत्युवार्ता आचार्य्य ने सुनी तब उनकी वह गूढ़ आशा एक दम निर्मूल हो गई । इसी से उन्होंने हथियार रख दिये । उन्होंने मन ही मन कहा होगा कि अब मुझ बूढ़े ब्राह्मण के लिए अस्त्र शस्त्र रखना व्यर्थ है । क्योंकि जिसके लिए यह सारी खट-पट थी, अब तो वही न रह गया । "

दुर्योधन को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ । उस ने कहा — " हां, यह बात थी ! " इतने में कृपाचार्य्य और अश्वत्थामा दोनों वहां पहुंच गये ।

दुर्योधन के पास पहुंच कर अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य ने देखा कि कर्ण भी दुर्योधन के पास बैठे हुए हैं । कृपाचार्य्य और अश्वत्थामा ने पहुंचते ही दुर्योधन का जयजयकार किया । दुर्योधन अपने आसन से उठ बैठा और उनको प्रणाम कर के बड़े आदर से बिठाया । फिर वह अश्वत्थामा से इस प्रकार कहने लगा —

" हे गुरुपुत्र ! आपके पूज्य पिता के न रहने से मुझे बड़ा ही दुःख हुआ है । उनके मारे जाने से मैं निःसहाय हो गया । वे मेरे बहुत बड़े सहायक थे । हाय ! अब उनके सदृश पराक्रमी और शूरवीर सेनानायक मिलने

की मुझे आशा नहीं। तथापि, आप भी कुछ कुछ उन्हीं के समान हैं। बल और बुद्धि भी आप में कम नहीं। इस से असहाय हो जाने पर भी मैंने अभी तक धीरज नहीं छोड़ा। आप सच समझिए, मुझे भी इस समय उतना ही दुःख है जितना कि आपको है। आपके पिता मेरे पिता के प्यारे मित्र थे। शस्त्र-विद्या में वे हम दोनों ही के गुरु थे। उनके शरीरनाश से मुझे जितना शोक हुआ है उसका अन्दाज़ा आप अपने ही शोक से कर सकते हैं।"

इस पर कृपाचार्य्य ने कहा—"बेटा अश्वत्थामा! कुरु-राज दुर्योधन ने जो कुछ कहा बहुत ठीक है। इन को सचमुच ही इस समय महा दुःख है। ये तुम्हारे दुःख से दुखी हैं। अतएव तुम्हें अब अपने दुःख की मात्रा कम करके धैर्य्य से काम लेना चाहिए।"

दुर्योधन और कृपाचार्य्य की बातें सुनकर अश्वत्थामा ने एक दुःखदर्शक लम्बी सांस ली और दुर्योधन से कहा कि हे कुरुराज! आप का मुझ पर सचमुच ही बहुत प्रेम है। फिर क्यों न आप मेरे दुःख से दुखी हों। आप के आश्वासन-वाक्यों से मेरा चित्त कुछ अवश्य हलका हुआ है। परन्तु मेरा हृदय इस बात को याद करके विदीर्ण हो रहा है कि मेरे जीते जी मेरे परम पूज्य पिता के केश खींचे गये। इस दशा में और लोग अपने पुत्रों से क्या आशा करेंगे? जिस पुत्र के रहते ही पिता

का अपमान किया जाय उस के उत्पन्न होने से न उत्पन्न होना ही अच्छा है ।

अब तक कर्ण चुपचाप बैठे थे । अब उनसे बिना बोले न रहा गया । उन्होंने कहा—"द्रोणनन्दन ! आपके पिता में इतनी शक्ति थी कि वे अपनी ही रक्षा नहीं, औरों को भी रक्षा करने में समर्थ थे । इतने सामार्थ्यवान हो कर भी जब उन्होंने युद्ध में हथियार रख कर अपना सिर कटवा लिया तब, इस विषय में, अब किया ही क्या जा सकता है ।"

कर्ण की यह बात अश्वत्थामा के हृदय में बाण सी लगी । वे बोले—'किया ही क्या जा सकता है' ! सुनिए जो कुछ किया जायगा—

"पाण्डवों की सेना में जिन लोगों के हाथ में शस्त्र है, अपनी भुजा में बल होने का जिन्हें कुछ भी गर्व है, पाञ्चाल-गोत्र में जिन्होंने जन्म पाया है—चाहे बूढ़े हों चाहे जवान, चाहे पैदा हुए हों चाहे अभी तक अपनी माँ के पेट ही में हों—उन में से जिस जिस ने मेरे पिता के अपमान को चुपचाप बैठे हुए देखा है उस उस का सिर काटे बिना मैं रहने का नहीं । मैं इन्हीं सब लोगों का नहीं, किन्तु काल का भी काल हूं । जिस समय क्रोधान्ध हो कर मैं रणभूमि में उतर पड़ूंगा उस समय मुझ से विरुद्ध आचरण करने वाला एक भी शस्त्रधारी जीता न बचेगा । सुना आप ने, क्या किया

की मुझे आशा नहीं। तथापि, आप भी कुछ कुछ उन्हीं के समान हैं। बल और बुद्धि भी आप में कम नहीं। इस से असहाय हो जाने पर भी मैंने अभी तक धीरज नहीं छोड़ा। आप सच समझिए, मुझे भी इस समय उतना ही दुःख है जितना कि आपको है। आपके पिता मेरे पिता के प्यारे मित्र थे। शस्त्र-विद्या में वे हम दोनों ही के गुरु थे। उनके शरीरनाश से मुझे जितना शोक हुआ है उसका अन्दाज़ा आप अपने ही शोक से कर सकते हैं।"

इस पर कृपाचार्य्य ने कहा—"बेटा अश्वत्थामा! कुरु-राज दुर्योधन ने जो कुछ कहा बहुत ठीक है। इन को सचमुच ही इस समय महा दुःख है। ये तुम्हारे दुःख से दुखी हैं। अतएव तुम्हें अब अपने दुःख की मात्रा कम करके धैर्य्य से काम लेना चाहिए।"

दुर्योधन और कृपाचार्य्य की बातें सुनकर अश्वत्थामा ने एक दुःखदर्शक लम्बी साँस ली और दुर्योधन से कहा कि हे कुरुराज! आप का मुझ पर सचमुच ही बहुत प्रेम है। फिर क्यों न आप मेरे दुःख से दुखी हों। आप के आश्वासन-वाक्यों से मेरा चित्त कुछ अवश्य हलका हुआ है। परन्तु मेरा हृदय इस बात को याद करके विदीर्ण हो रहा है कि मेरे जीते जी मेरे परम पूज्य पिता के केश खींचे गये। इस दशा में और लोग अपने पुत्रों से क्या आशा करेंगे? जिस पुत्र के रहते ही पिता

का अपमान किया जाय उस के उत्पन्न होने से न उत्पन्न होना ही अच्छा है।

अब तक कर्ण चुपचाप बैठे थे। अब उनसे बिना बोले न रहा गया। उन्होंने कहा—"द्रोणनन्दन! आपके पिता में इतनी शक्ति थी कि वे अपनी ही रक्षा नहीं, औरों को भी रक्षा करने में समर्थ थे। इतने सामर्थ्यवान हो कर भी जब उन्होंने युद्ध में हथियार रख कर अपना सिर कटवा लिया तब, इस विषय में, अब किया ही क्या जा सकता है।"

कर्ण की यह बात अश्वत्थामा के हृदय में बाण सी लगी। वे बोले—'किया ही क्या जा सकता है'! सुनिए जो कुछ किया जायगा—

"पाण्डवों की सेना में जिन लोगों के हाथ में शस्त्र है, अपनी भुजा में बल होने का जिन्हें कुछ भी गर्व है, पाञ्चाल-गोत्र में जिन्होंने जन्म पाया है—चाहे बूढ़े हों चाहे जवान, चाहे पैदा हुए हों चाहे अभी तक अपनी माँ के पेट ही में हों—उन में से जिस जिस ने मेरे पिता के अपमान को चुपचाप बैठे हुए देखा है उस उस का सिर काटे बिना मैं रहने का नहीं। मैं इन्हीं सब लोगों का नहीं, किन्तु काल का भी काल हूं। जिस समय क्रोधान्ध हो कर मैं रणभूमि में उतर पड़ूंगा उस समय मुझ से विरुद्ध आचरण करने वाला एक भी शस्त्रधारी जीता न बचेगा। सुना आप ने, क्या किया

जा सकता है? अङ्गराज कर्ण! क्षमा कीजिये, मैं और भी कुछ आप को सुनाना चाहता हूं। वह भी सुन लीजिए। क्या आप नहीं जानते कि यह वही देश है जिस में एक क्षत्रिय के द्वारा अपने पिता का केशाकर्षण-रूपी अपमान हुआ देख प्रबल पराक्रमी परशुराम ने अपने शत्रुओं के रुधिर से बड़े बड़े तालाब ऊपर तक भर दिए थे। जिन शस्त्रों की सहायता से परशुराम ने ऐसा आतङ्ककारक घोर कर्म किया था वही परम तेजस्वी शस्त्र मेरे भी पास हैं। अतएव क्रोधान्ध होकर मैं भी आज वही अद्भुत काम करने के लिए तैयार हूं।"

अश्वत्थामा के इन वचनों से दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अश्वत्थामा की बड़ी बड़ाई की। उनके उत्साह और शौर्य वीर्य्य को बहुत सराहा। दुर्योधन को प्रसन्न देख कृपाचार्य्य ने अपने मन की बात कहने के लिए यह मौक़ा बहुत अच्छा समझा। उन्होंने दुर्योधन से निवेदन किया कि कृपा कर के अश्वत्थामा को ही आप सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दीजिए। इस युद्ध के भारी भार को उठाने के लिए अश्वत्थामा सर्वथा योग्य है। मुझे विश्वास है कि यदि इसे आप सेनापति बना देंगे तो पाण्डवों की सेना की तो कुछ बात ही नहीं, तीनों लोकों को भी उखाड़ फेंकने में इसे देर न लगेगी। अतएव अब इस के सिर पर सेनापति के अभिषेक-जल का सेचन करने में विलम्ब न करना चाहिए।

दुर्योधन ने कृपाचार्य्य की सूचना को बहुत पसन्द किया और उसे हितकर भी समझा। परन्तु उसने कहा कि अब यह बात नहीं हो सकती, क्योंकि मैं अङ्ग राज कर्ण को पहले ही से सेनापति का पद दे चुका हूं। इस पर दुर्योधन, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कर्ण में इस प्रकार परस्पर बात चीत हुई —

कृपाचार्य्य—"कौरवेश्वर! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इस समय अपार शोकसागर में डूबे हुए हैं। अतएव इन की ऐसी अवस्था में आप को इनका अधिक खयाल करना चाहिए। अङ्गराज कर्ण को प्रसन्न करने के लिए इनकी उपेक्षा करना उचित नहीं। यह भी उन्हीं शत्रुओं के संहार करने के लिए कमर कसे हुए बैठे हैं जिनका संहार करने के लिए आप ने कर्ण को सेनापति बनाया है। इस समय यदि आप मेरी प्रार्थना को अस्वीकार करके अश्वत्थामा का सत्कार न करेंगे तो निःसन्देह इन्हें बहुत दुःख होगा।"

अश्वत्थामा —"राजन्! क्या अब भी भले बुरे का विचार आप को शोभा दे सकता है। युक्त और अयुक्त का विचार अब आप एकदम छोड़ दीजिए। मेरी बात पर आप विश्वास कीजिए। अपने बलशाली बाहुओं की बदौलत आज मैं इस भूमि को बिना कृष्ण का, बिना पाण्डवों का और बिना सोमवंशियों का कर दूंगा। यह सारी समर लीला आज ही समाप्त हो जायगी। अन्यायी पाण्डवों के बोझ से जो

इस समय पृथ्वी दबी जा रही है वह भी आज ही हलकी होजायगी। इन बातों को आप अतिशयोक्ति न समझिए।"

कर्ण — "द्रोणपुत्र! कहने और करने में बहुत अन्तर होता है। कह डालना बहुत सीधा काम है, परन्तु कर दिखाना बहुत दुष्कर है। कौरव-सेना से अकेले आप ही इतने बली नहीं। और भी कितने ही वीर ऐसे हैं जो यह सब काम सहज ही कर सकते हैं।"

अश्वत्थामा — "कौरवों की सेना में ऐसे पराक्रमी अनेक वीर हो सकते हैं। इस बात को मैं अस्वीकार नहीं करता। परन्तु दुःख से मेरा हृदय अभिभूत हो रहा है। शोक का वेग मेरे हृदय में पल पल पर बढ़ता जाता है। इसी से जो कुछ मैंने अपने पराक्रम के सम्बन्ध में कहा वह दुःख और शोक के वशीभूत होकर कहा। उसे आप कौरव वीरों पर आक्षेप न समझिए।"

कर्ण — "जो दुखी होता है, जो शोक से सन्तप्त होता है, वह आंसू बहाता है। जिस के हृदय में क्रोध का आवेग होता है वह समरभूमि में जाकर अपनी वीरता दिखाता है। तेरी तरह व्यर्थ प्रलाप नहीं करता। शस्त्र हाथ में रख कर भी जो तेरी तरह बकवाद करता है वह तो अपने को और भी अधिक उपहास का पात्र बनाता है। अपनी पूर्वोक्त बातों से इस समय तू ने भी अपने को ऐसा ही उपहासास्पद बनाया है।"

अश्वत्थामा — "रे अधम सूत! अपनी माता राधा के

गर्भ का भार बढ़ाने वाले ! तू क्या नहीं जानता कि तू ऐसी बात कह कर मेरा अपमान कर रहा है ? चुप रह, नहीं तो अभी इसी क्षण में तुझे तेरी गुस्ताख़ी का मज़ा चखा दूंगा ।"

कर्ण—"इस तरह बढ़ बढ़ कर बातें मारना तेरे ही सदृश ब्राह्मणाधम को शोभा देता है । सूत होना, या सूत का सुत होना, या और ही कुछ होना मनुष्य के अधीन नहीं । ये बातें दैव के अधीन हैं । परन्तु बल, पौरुष और पराक्रम मेरे अधीन है । वह तू जब चाहे देख सकता है । मैं तुझ से डरने वाला नहीं ।"

अश्वत्थामा—"क्या तू मुझ अश्वत्थामा को भी दुःखों का प्रतिकार, आंसू बहाकर, करने की शिक्षा देता है ? मैं क्या अपने अपमानकारियों का बदला आंसू बहा कर लेने वाला हूं ? शस्त्र उठाकर नहीं ? जिस तरह गुरु के शाप से तेरे शस्त्र कुण्ठित हो गये हैं उसी तरह क्या मेरे भी कुण्ठित हो गये हैं ? क्या जैसे तू अभी कुछ ही देर पहले भय से विगलित-वीर्य्य हो कर युद्धस्थल से भाग आया है वैसे ही क्या मैं भी भाग आया हूं ? क्या जैसे तू ने नीच सारथियों के वंश में जन्म लिया है वैसे ही क्या मैंने भी लिया है ? रे नीच ! क्या मैं अपने क्षुद्र शत्रु के द्वारा किये गये अपमान का बदला आँसू बहा कर लूँगा ? शस्त्र उठा कर नहीं ?"

कर्ण—"रे बकवादी ! रे व्यर्थ ही शस्त्र धारण करने

वाले ब्राह्मण के बच्चे! लम्बी लम्बी भुजाये रख कर भी जैसे तेरे पिता ने धृष्टद्युम्न के डर से हथियार रख दिये वैसे ही मैं ने तो उन्हें — चाहे वे कुण्ठित हों, चाहे अकुण्ठित — रक्खे नहीं ?"

अश्वत्थामा— "अरे रथ बनाने वालों के कुल के कलङ्क! राधा के गर्भ में रह कर उसे व्यर्थ ही कष्ट देने वाले! शस्त्रविद्या का कुछ भी ज्ञान न रखने वाले! मूर्ख-शिरोमणि! तू मेरे पिता के विषय में ऐसे अनुचित शब्द अपने मुंह से निकालता है। मेरे पिता के पराक्रम का हाल कौन नहीं जानता? वह त्रिभुवन में विदित है। युद्ध में जो बल-विक्रम उन्हों ने दिखाया उस का साक्ष्य यह पृथ्वी दे रही है! किस कारण से उन्हों ने शस्त्र रख दिये, इस बात को सत्यव्रतधारी पृथापुत्र युधिष्ठिर अच्छी तरह जानते हैं। रण से भाग निकलने वाले डरपोक तू क्या जाने। तू वहां उस समय था भी ?"

कर्ण—"मैं डरपोक और तू बड़ा बहादुर। तेरे पिता की वीरता याद कर के मुझे डर लग रहा है कि न जाने तू क्या कर डालेगा। अरे जिन के हाथ में शस्त्र नहीं होता वे ख़ाली हाथ ही शत्रु से मुक़ाबला करने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु तेरे पिता की वीरता का क्या कहना है। वह तो अबला की भांति बड़े बड़े राजाओं के सामने चुपचाप बैठा हुआ अपना केशाकर्षण

कराता रहा, चूं तक न की। बहादुरी हो तो ऐसी हो!!!"

यह सुनते ही अश्वत्थामा क्रोध से अधीर हो उठे। उन्हों ने म्यान से तलवार खींच ली और कर्ण को मारने के लिए झपटे। इस पर कृपाचार्य्य और दुर्योधन ने उन को रोक लिया। उन्हें बहुत कुछ समझाया बुझाया और क्रोध शान्त करने के लिए उन से बहुत ही विनीत भाव से प्रार्थना की।

उधर कर्ण भी क्रोध के अत्यन्त वशीभूत हो कर आपे से बाहर हो गया। उसने भी तलवार खींच ली और कहा कि तू ब्राह्मण है; इस कारण तेरा सिर धड़ से अलग करने में मुझे सङ्कोच होता है। तब अश्वत्थामा ने अपना जनेऊ तोड़ कर फेंक दिया और कहा—"लो, अब तो ब्राह्मणत्व का सूचक चिन्ह मेरे शरीर पर नहीं! अब आ जा।"

बात धीरे धीरे बढ़ती ही गई। अश्वत्थामा और कर्ण एक दूसरे पर वार करने ही को थे कि दुर्योधन और कृपाचार्य्य ने उन दोनों को पकड़ लिया। उन्हों ने समझाया कि जिन शस्त्रों का उपयोग शत्रुओं के मारने में होना चाहिए उन्हें तुम आपस ही में एक दूसरे पर चलाना चाहते हो, यह बड़े ही दुःख और दुर्भाग्य की बात है। आपस की इस फूट से शत्रुदल और भी प्रबल हो जायगा और संसार हम लोगों की इस मूर्खता पर हंसेगा।

यह सुन कर अश्वत्थामा ने अपने शस्त्र फेंक दिये। उन्हों ने कहा कि जब तक सूतपुत्र कर्ण संग्राम में सदा के लिए न सो जायगा तब तक मैं शस्त्र न ग्रहण करूंगा। देखूं भीम और अर्जुन के शस्त्राघात से यह किस तरह अपनी रक्षा करता है।

इस पर कर्ण ने यह कह कर अश्वत्थामा की हंसी उड़ाई कि बाप से बेटा सवाई निकला। बाप ने तो रण में शस्त्र रख दिये थे; इस ने रणस्थल के बाहर ही मारे भय के उन्हें रख दिया।

इतने में दुर्योधन का विश्वस्त सेवक विनयन्धर वहां घबराया हुआ आया। पहले तो उस के मुंह से घबराहट के कारण बात ही न निकली। पर बहुत पूछने पर किसी तरह कांपते हुए उस ने कहा—

"हाय! अनर्थ हो गया। भीमसेन ने प्रतिज्ञा की है कि जिस दुरात्मा दुःशासन ने द्रौपदी के केश खींचे थे आज उसे मार कर— आज उस के हृदय को विदीर्ण कर के – उस का रुधिर अवश्य ही पी लूंगा। कहां हैं दुर्योधन, कर्ण आदि नरपशु! आवें और दुःशासन को मेरे पञ्जे से छुड़ावें!"

विनयन्धर की बात समाप्त न होने पाई थी कि अश्वत्थामा बोल उठे—

"वीरवर अङ्गराज! कौरवों के सेनापति! परशुराम के शिष्यशिरोमणि! गुरुवर द्रोणाचार्य्य के निन्दक!

अपने भुजबल से त्रिलोक की रक्षा करने वाले! वीरता दिखाने का अवसर आ गया। अब जाइए। यदि भुजाओं में कुछ भी बल हो तो बेचारे दुःशासन को बचा लीजिए।

कर्ण— "चुप रह ब्राह्मणाधम! मेरे रहते दुःशासन का बाल भी बांका न होगा। भीम बेचारे की क्या मजाल जो दुःशासन के शरीर पर हाथ भी तो लगा सके।"

इतना कह कर दुर्योधन और कर्ण अपने अपने रथों पर सवार हो कर दुःशासन की रक्षा के लिए युद्ध के मैदान में जा पहुंचे।

इधर अश्वत्थामा को शस्त्र त्याग करने पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्हों ने कृपाचार्य्य से कहा कि आज दुःशासन बचने का नहीं। मेरा जी नहीं मानता। मैं प्रतिज्ञा की परवा न कर के शस्त्र फिर उठाता हूं और दुःशासन की रक्षा करने जाता हूं।

इस पर सत्य की महिमा और प्रतिज्ञा भङ्ग करने के पातक पर कृपाचार्य्य ने एक युक्तिपूर्ण वक्तृता की। तब अश्वत्थामा ने कहा—अच्छा आप की आज्ञा सिर पर है। मैं कर्ण के जीते शस्त्र न उठाऊंगा। पर इस सङ्कट के समय आपको भी जा कर राजा दुर्योधन और उन के भाई दुःशासन की सहायता करनी चाहिए। जाइए, अब देर न कीजिए। यह कह कर अश्वत्थामा तो अपने डेरों को गये और कृपाचार्य्य ने समरभूमि का मार्ग लिया।

मसेन के क्रोधावेश का हाल पाठक इस पुस्तक के आरम्भ में देख चुके हैं। उनकी प्रतिज्ञा भी वे सुन चुके हैं। जिस समय युद्ध में भीमसेन ने दुःशासन पर आक्रमण किया उस समय वे प्रत्यक्ष काल का रूप हो गये। उन्होंने उस समय ऐसा भयंकर और दिल दहलाने वाला युद्ध किया जैसा पहले न कभी देखा गया था न सुना। कौरवों के पक्ष के कर्ण आदि बड़े बड़े योद्धाओं की सारी चेष्टायें विफल हो गईं। किसी की भी कुछ न चला। भीमसेन ने दुःशासन की छाती फाड़ डाली और कलेजे से निकला हुआ रुधिर पी कर अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी कर दी। जिस समय ऐसा घोर और वीभत्स काम कर के वे रणभूमि में निःशंक बिचरने लगे उस समय कौरवों ही की सेना में नहीं, पाण्डवों की भी सेना में बड़े बड़े बीर तक भयभीत हो कर इधर उधर भागने लगे। उनका उस समय का वह विकराल रूप किसी से देखा ही न गया। इधर उधर लोगों को इस तरह भागते देख भीमसेन ने उन्हें ललकारा। वे बोले—

"अरे, क्यों तुम लोग इस तरह शस्त्रास्त्र फेंक कर भागे जा रहे हो ? इतना डरते क्यों हो ? मेरा नाम भीमसेन है। मैं कोई भूत-प्रेत या पिशाच नहीं। दुःशासन को मार कर और उसका रुधिर पान कर के द्रौपदी के अपमान का आज मैंने बदला ले लिया। अपने बल का इतना गर्व रखने वाले, बड़ी बड़ी बातें बनाने वाले और व्यर्थ ही गर्जन तर्जन करने वाले शल्य, कर्ण, दुर्योधन आदि सब अपना सा मुँह लिए रह गये। सब के देखते ही मैंने उस दुरात्मा दुःशासन की छाती फाड़ डाली। ये दो चार कौरव जो बच रहे हैं वे भी शीघ्र ही दुःशासन के पथ के पथिक बनने वाले हैं। मैं सच कहता हूँ, मेरी दूसरी प्रतिज्ञा भी पूर्ण होने में अब अधिक विलम्ब नहीं। दुर्योधन की जङ्घा चूर चूर कर डालना मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं।"

अच्छा तो अब भीमसेन को कौरव-सेना का संहार करने दीजिए। आइए तब तक हम लोग देखें कि कौरवों के राजा दुर्योधन की क्या दशा है। दुर्योधन कुछ ऐसा वैसा वीर न था। उसने भी बड़ा ही भयंकर युद्ध किया। उस की प्रचण्ड गदा के आघात से पाण्डवों की अनगिनत सेना समरभूमि में सदा के लिए सो गई। परन्तु दैव पाण्डवों के पक्ष में था। युद्ध करते करते दुर्योधन ने ऐसी गहरी चोट खाई कि वह बेहोश हो गया। उसे मूर्छित हुआ देख, और उसकी जंघा तोड़ने

की प्रतिज्ञा करने वाले भीमसेन की ललकार सुन कर, सारथी ने अपने घायल स्वामी को युद्ध के मैदान में पड़ा रहने देना उचित न समझा। अतएव उसे वैसा ही रथ पर डाल समरभूमि से वह रथ भगा लाया।

युद्ध के मैदानसे थोड़ी दूर पर एक सरोवर के किनारे, एक बड़ा सा बरगद का वृक्ष था। उसी के नीचे रथ को सारथी ने खड़ा कर दिया। फिर पंखा झल कर तथा और भी उपचार करके वह दुर्योधन को होश में लाने की चेष्टा करने लगा। पर दुर्योधन को होश न आया। तब सारथी घबरा गया। उसने धीरे धीरे कहा—"जान पड़ता है कि कौरवों का भाग्य इस समय उन के बिलकुल ही विपरीत है। यदि ऐसा न होता तो सिन्धुराज जयद्रथ को अभयदान देकर आचार्य्य द्रोण उसकी रक्षा अवश्य ही कर सकते। पर न कर सके। यह भाग्य का फेर नहीं तो क्या है। दुःशासन की आज जो दशा हुई वह भी कौरवों के ही दुर्भाग्य का फल है। महाराज दुर्योधन अब तक अचेत पड़े हुए हैं। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। कुरुवंश के सारे वीर मारे गये। यहां तक कि महाराज के भाई भी सब काम आ गये। तिस पर भी दुर्दैव की कुदृष्टि अब तक महाराज दुर्योधन पर बनी हुई मालूम होती है। जान पड़ता है, ब्रह्मा अब कौरवों के कुल का उच्छेद कर के ही छोड़ेगा। हाय! महाराज दुर्योधन और अङ्गराज कर्ण के रहते कुमार दुःशासन की यह दुर्गति!"

सारथी के मुह से ये पिछले शब्द सुनते ही दुर्योधन की मूर्छा जाती रही। उसे चेत हो आया। वह कहने लगा—"हाथ में हथियार रखते और दुर्योधन के जीते रहते कुमार दुःशासन की दुर्गति कौन कर सकता है। उस भीरु भीमसेन की क्या हक़ीक़त है। वह दुःशासन का बाल भी बांका न कर सकेगा। बेटा, डरना मत। मैं आगया।"

यह कह कर दुर्योधन ने सारथी को रणस्थल से रथ भगा लाने के कारण बहुत फटकारा और फिर रथ को वहीं पहुंचा देने के लिए आज्ञा दी। सारथी ने प्रार्थना की कि महाराज घोड़े बहुत थक गये हैं। ज़रा देर ठहर जाइए। उन्हें आराम कर लेने दीजिए। परन्तु दुर्योधन ने उसके हीले हवाले की कुछ भी परवा न की और बिना रथ के ही समरभूमि में जाने के लिए तैयार हो गया। इस पर सारथी रोता गिड़-गिड़ाता हुआ उस के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, महाराज, अब आप रणभूमि में जा कर क्या कीजिएगा। अब तक तो दुरात्मा भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर के लौट भी चुका होगा। यह सुनते ही दुर्योधन मूर्छित हो कर सहसा भूमि पर गिर पड़ा। कुछ देर तक वह फिर भी अचेत पड़ा रहा। होश आने पर वह दुःशासन के लिए रोने और कलपने लगा—

"हा प्यारे दुःशासन! तू कहां गया? मेरी ही आज्ञा से तू ने पाण्डवों को अपना शत्रु बनाया था। हाय! हाय! मैं तेरे किसी काम न आया। यद्यपि तू ने मेरे लिए न

मालूम कौन कौन सी विपत्तियां झेलीं, परन्तु मुझ अभागी से तेरी रक्षा न हो सकी। अरे सारथी तुझे धिक्कार है! तू ने यह क्या किया! तुझे कदापि मेरा रथ रणभूमि से न भगा लाना था। युवराज दुःशासन की रक्षा करना मेरा परम धर्म था। परन्तु तू ने उसके प्राणों का बलि-दान करके मेरे प्राणों की रक्षा की। हाय अब मैं क्या करूं? दुःशासन ही नहीं, मेरे और भी तो भाई मर चुके। अब यदि पाण्डवों को हरा कर मैं ने राज्य प्राप्त भी कर लिया तो वह मेरे लिए किस काम का? दुःशासन के रुधिर से आर्द्र हुई पृथ्वी पर गदा की चोट खा कर मैं भी क्यों न लोट गया? अथवा यदि मैं वहां उपस्थित होता, तो बहुत सम्भव था, धूर्त वृकोदर ही मेरी गदा के आघात से यमलोक का रास्ता लेता। परन्तु दोनों बातों में से एक भी न हुई। हा दुर्भाग्य! विधाता तू बड़ा ही निर्दयी है!"

इतने में सुन्दरक नामक एक घायल सैनिक कौरवों की सेना से भाग कर दुर्योधन को ढूंढ़ता हुआ उसके पास आया। उसे देखते ही दुर्योधन ने पूछा—"सुन्दरक! अङ्ग-राज कर्ण कुशल से तो हैं?"

सुन्दरक—"अङ्गराज कर्ण का शरीरमात्र कुशल से है।"

दुर्योधन—"क्या अर्जुन ने अङ्गराज के घोड़ों को भी मार डाला और सारथी को भी? और क्या उनका रथ भी तोड़ डाला?"

सुन्दरक—"उन का केवल रथ ही नहीं चूर चूर कर डाला गया; किन्तु उनका मनोरथ भी। भीमसेन ने कुमार दुःशासन का ... . ।"

इतना ही कहकर सुन्दरक ढाढ़ें मार मार कर रोने लगा।

इस पर दुर्योधन की आंखों से फिर आंसुओं की धारा बह निकली। उसे रूमाल से पोंछ कर उस ने सुन्दरक से कहा कि मैं यह हृदय-विदारक समाचार सुन चुका हूं। जो कुछ दुर्दैव सुनावेगा वह अवश्य ही सुनना पड़ेगा। इस लिए अब तू वहां का सारा वृत्तान्त सही सही मुझ से कह दे।

दुर्योधन की आज्ञा पाकर सुन्दरक ने अपना हृदय कड़ा किया और इस प्रकार समर-समाचार उस ने कह सुनाया—

"कुमार दुःशासन का वध देखते ही अङ्गराज कर्ण क्रोध से उन्मत्त हो उठे। भौहें टेढ़ी हो गईं। आंखें जलने लगीं। उन्हों ने इस वेग से उस दुराचारी भीमसेन पर तेज़ बाण बरसाना आरम्भ किया कि किसी ने देख ही न पाया कि कब बाण तरकस से निकले, कब धनुष पर रक्खे गये और कब छूटे। चारों तरफ़ बाण ही बाण दिखाई देने लगे। सर्वत्र अन्धकार छा गया। भीम-सेन से बड़ा ही भीषण संग्राम ठन गया। धनुष की टङ्कारों का शब्द प्रलयकाल के मेघों की गर्जना के समान सुनाई देने लगा। वीरों के शरीर पर धारण किये गये

लोहे के ज़िरह बख़्तरों पर तड़ातड़ बाण लगने लगे। उनके आघात से आग की चिनगारियां निकलने लगीं, जो बिजली की चमक के समान मालूम होती थीं। ऐसी दुर्धर्ष बाण-वर्षा होती देख अर्जुन को सन्देह हुआ कि ऐसा न हो जो कर्ण से कहीं भीमसेन हार जायं। इस कारण वासुदेव से उन्होंने प्रार्थना की कि मेरे कपिध्वज रथ को बड़ी तेज़ी से वहां पहुंचाइए जहां कर्ण और भीमसेन का युद्ध हो रहा है। इस पर वासुदेव ने एकदम सरपट घोड़े छोड़ दिये और शंखध्वनि करते हुए एक क्षण में अर्जुन वहां पर जा पहुंचे। तब अर्जुन और भीमसेन दोनों ने मिल कर बड़ी ही निष्ठुरता से एक ही साथ कर्ण पर आक्रमण किया।"

"अङ्गराज कर्ण के पुत्र कुमार वृषसेन ने देखा कि मेरे पिता के ऊपर दो बली वीर एक ही साथ आक्रमण कर रहे हैं। यह अन्याय है। इस कारण पिता की सहायता के लिए वह तुरन्त ही वहां आ कर उपस्थित हुआ और अपने धन्वा को कान तक तान कर इतने बाण बरसाये कि अर्जुन का रथ बाणों से बिलकुल ही ढक गया। उसे इस प्रकार बाण बरसाते देख अर्जुन ने मुसकरा कर कहा— 'अरे वृषसेन! तेरा बाप तो मेरे सामने टिक ही नहीं सकता; फिर भला तेरी क्या बिसात है जो मुझ से युद्ध कर सके। जा अपनी उम्र के लड़कों के साथ युद्ध कर।" इस पर कुमार वृषसेन को अपार क्रोध हो आया। उससे पिता का अपमान न सहा गया। उस ने अर्जुन

के परुष वचनों का उत्तर परुष वचनों से न दे कर बड़े ही विषम और बड़े ही मर्मभेदी तेज़ बाणों की वर्षा से दिया। कुमार वृषसेन के उन कालरूपी बाणों की मार ने अर्जुन को क्रोध से पागल कर दिया। उन्होंने गाण्डीव नामक अपने धन्वा का चिल्ला खींच कर वज्रपात के समान दिल दहलाने वाला भीषण टङ्कार किया। फिर अपने हस्त-लाघव और शिक्षा के प्रभाव से बड़ी ही आश्चर्यकारिणी बाणवर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु कुमार वृषसेन इस से कुछ भी विचलित न हुआ। उसने भी बड़े प्रखर बाण बरसा कर लोगों को आश्चर्य के सागर में डुबो दिया। उस के अद्भुत रणकौशल को देख कर कौरव-सेना के बड़े बड़े वीर भी—' वृषसेन शाबाश, शाबाश '—कहने लगे। पुत्र का ऐसा अद्भुत पराक्रम देख अङ्गराज कर्ण के हृदय में हर्ष, रोष, करुणा, शोक, सङ्कट इत्यादि सभी भाव एक ही साथ उत्पन्न हो गये। अतः भीमसेन की तरफ़ तो उन्होंने अपने धनुष से बाणों की वर्षा प्रेरित की और कुमार वृषसेन की तरफ़ आंसुओं से भीगी हुई अपनी दृष्टि। इस समय पाण्डवों और कौरवों के दोनों दलों के वीरों को वृषसेन की प्रशंसा करते देख अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्हों ने वृषसेन के घोड़ों को भी मार गिराया और सारथी को भी। यही नहीं, किन्तु उस के रथ, धनुष और ध्वजा को भी अपने तेज़ बाणों से काट कर उन्होंने टुकड़े टुकड़े कर दिये। परन्तु वाह रे कुमार

वृषसेन! इतने पर भी वह ज़रा भी विचलित न हुआ। वह ज़मीन पर पैंतड़ा बदलते हुए अर्जुन के बाणों से अपनी रक्षा करने लगा।"

"इधर अङ्गराज कर्ण ने भीम को तो छोड़ दिया और अर्जुन के सामने अपना रथ लाकर उस पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। वृषसेन भी तब तक दूसरे रथ पर सवार होगया। तब पिता पुत्र दोनों ने मिलकर अर्जुन के रथ को असंख्य बाणों से बिलकुल ही ढक दिया। इस पर अर्जुन को बेहद क्रोध हो आया। वे उन पिता पुत्र दोनों के चलाये हुए बाण बीच ही में काट गिराने लगे। इतने से भी उन्हें सन्तोष न हुआ। उन्हों ने रत्नों से जड़ी हुई, साक्षात् मृत्यु की लपलपाती हुई जीभ के समान, एक बड़ी ही भयङ्कर शक्ति निकाली। उसे उन्हों ने कुमार वृषसेन पर छोड़ दिया। उसे छूटते देख, भय के मारे, कर्ण के हाथ कांपने लगे और धनुष-बाण उन से छूट पड़ा। साथ ही उन के हृदय से उत्साह और आंखों से जल भी छूटा। इधर पाण्डवों की सेना में आनन्द का सूचक सिंहनाद और कौरवों की सेना में दुःख का सूचक हाहाकार मच गया। परन्तु वाह रे वृषसेन! उस ने उस शक्ति को कोई चीज़ ही न समझा। कानों तक धनुष को खींच कर उससे उसने ऐसे तीक्ष्ण बाण छोड़े कि उन्हों ने बीच ही में उस शक्ति के टुकड़े टुकड़े कर दिये। शक्ति व्यर्थ हुई देख अर्जुन के क्रोध का पारावार न रहा। उन्हों ने कौरवों की सेना के वीरों

को प्रलयकाल के मेघों के समान गम्भीर ध्वनि से ललकारा और अङ्गराज को बड़े ही रूखे और मर्मभेदक शब्दों से याद किया। उन्होंने कहा, 'तुम सब ने मेरी अनुपस्थिति में अभिमन्यु को अन्यायपूर्वक घेर कर मार डाला था। परन्तु मैं तुम सब के सामने ही वृषसेन को यमराज का अतिथि बनाता हूं। यदि तुम लोगों में कुछ भी बल, वीरता और साहस हो तो उसे बचाओ।' यह कह कर उधर अर्जुन ने तो अपना गाण्डीव धनुष चढ़ाया, इधर कर्ण ने अपना कालपृष्ठ नामक धनुष।"

"महाराज! गुस्ताखी मुआफ़ हो, अर्जुन के समान धनुष धारी इस भूमण्डल पर दूसरा नहीं। उस समय उन्हों ने ऐसा कौशल दिखाया कि कब उन्हों ने तरकस से बाण निकाला, कब धनुष पर रक्खा और कब चलाया, यह किसी को देख ही न पड़ा। थोड़ी ही देर में पृथ्वी और आकाश बाणों से व्याप्त हो गया। कर्ण, रथ, सारथी, घोड़े, ध्वजा आदि का कुछ पता ही न मालूम हुआ कि वे कहां गये। कुमार वृषसेन भी रथ-सहित बाणों से तोप दिये गये। इस के कुछ ही देर बाद कौरव-सेना ने यह कह कर हाय हाय मचाना आरम्भ किया कि कुमार वृषसेन मारे गये। उस समय देखा गया कि कुमार वृषसेन के घोड़े मरे पड़े हैं। सारथी भी मरा पड़ा है। उनके रथ और चाप के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। छत्र, चमर और ध्वजा भी कहीं पड़ी है। और स्वयं कुमार वृषसेन भी बाणों से बिधे

हुए धराशायी हो रहे हैं।"

वृषसेन के मरने का वृत्तान्त सुन कर दुर्योधन की आंखों से टपाटप आंसू गिरने लगे। वह हाय हाय करने लगा। वृषसेन के गुणों का स्मरण कर के प्रियदर्शन, शीलासागर, गुरुवत्सल इत्यादि विशेषणों से उसका सम्बोधन करते हुए बड़ी देर तक वह विलाप करता रहा। सारथी ने उसे बहुत समझाया। पर दुर्योधन का विलाप बन्द न हुआ। वृषसेन के कारण ही नहीं, किन्तु अपने मित्र कर्ण के दुःख से भी वह बहुत दुखी हुआ। उसने कहा—"हाय मित्र! अपने प्राणोपम पुत्र को मरते देख तुम्हें जो दुख हुआ होगा उस का स्मरण कर के ही मेरी छाती फटी जाती है।"

बड़ी देर बाद जब दुर्योधन के दुःख का वेग कुछ कम हुआ तब उस ने सुन्दरक को आगे का हाल कहने की आज्ञा दी। सुन्दरक बोला—

"पुत्र का नाश देख कर्ण ने प्राण-धारण की आशा परित्याग कर दी। उन्हों ने कवच उतार कर रख दिया और जी-जान होम कर पाण्डवों से लड़ना आरम्भ किया। परन्तु पाण्डवों ने उन का रथ भी तोड़ डाला और उन्हें घायल भी कर दिया। शल्य ने यह देखा कि अब कर्ण के प्राण नहीं बचते। इस से रथ पर डाल कर उन्हें वे युद्धस्थल से बाहर ले गये। वहां वे उनसे यह प्रार्थना कर रहे हैं कि कुछ देर के लिए तुम्हें युद्ध बन्द कर देना चाहिए। इस समय भीम

और अर्जुन के साथ युद्ध करने में कुशल नहीं। परन्तु वे उनको एक नहीं मानते। उन्हों ने अपने ही घाव से निकले हुए रुधिर में बाण की नोक डुबो कर यह चिट्ठी आप को दी है। इसे आप पढ़ लीजिए —"

'स्वस्ति श्रीमहाराज दुर्योधन से युद्ध के मैदान से कर्ण इस प्रकार निवेदन करता है। आप अब तक यह समझते थे कि मैं शस्त्रविद्या में बहुत ही निपुण हूं। युद्ध में मेरी बराबरी करने वाला कोई नहीं। मैं आप के भाइयों से भी बढ़ कर हूं। मेरी ही सहायता से आप पाण्डवों का नाश करेंगे। परन्तु आप की आशा फलवती न हुई। दुःशासन के मारने वाले भीमसेन को भी मैं न मार सका। अब और मुझसे क्या हो सकेगा? अतएव या तो अब आप स्वयं ही अपनी भुजाओं के बल से अपने दुःख का प्रतिकार करें, या यदि यह न हो सके तो, आंखों से गिरी हुई अश्रुधारा ही से दुःख की आग को बुझावें। इस के सिवा और कोई इलाज नहीं।'

यह पत्र पढ़ कर दुर्योधन का दुःख दूना हो गया। उसने कहा—"अङ्गराज कर्ण तुम मेरे प्यारे मित्र होकर भी मुझे ऐसे परुष वाक्यों से इस समय क्यों पीड़ित करते हो? मेरे सौ भाई मारे जा चुके हैं। वही दुःख मेरे लिए क्या कम है?"

यह कह कर दुर्योधन ने सुन्दरक से पूछा—"भद्र, इस समय अङ्गराज कर क्या रहे हैं?"

सुन्दरक—"प्राणों की आशा छोड़कर समरभूमि में कट मरने के लिए वे तैयार हो रहे हैं।"

ने—"सुन्दरक, तू तुरन्त हो जा और मित्रवर कर्ण
कह दे कि ऐसे समय में तुम्हें अकेले रणभूमि में जाना
उचित नहीं। तुम्हें यह समझना चाहिए कि न वृषसेन तुम्हारा
पुत्र था और न दुःशासन मेरा भाई। मैं तुम्हें क्या कहकर
आश्वासन दूं? तुम्हें तो स्वयं ही मेरा आश्वासन करना चाहिए।
ज़रा ठहरो, मैं भी आता हूं। फिर दोनों मिल कर पृथा के
पांचों पुत्रों को मार कर हम लोग साथ ही इस शोकसन्तप्त
शरीर को छोड़ देंगे। इस के पहले नहीं।"

दुर्योधन का यह सन्देश ले कर उधर सुन्दरक तो कर्ण
के पास गया। इधर दुर्योधन ने संग्रामभूमि में जाने के लिए
रथ में घोड़े जोतने की आज्ञा सारथी को दी।

दसवाँ परिच्छेद
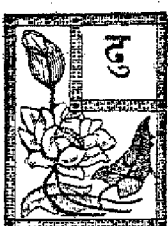
दुर्योधन का रथ तैयार न हुआ था कि कुछ
दूर पर एक और रथ के आने की घरघरा-
हट सुनाई दी। मालूम हुआ कि धृतराष्ट्र
और गान्धारी, दोनों, दुर्योधन से भेंट
करने के लिए आ रहे हैं। इस पर दुर्यो-
धन को बड़ा असमञ्जस हुआ। उसने कहा, जबसे युद्ध
छिड़ा बराबर मेरी ही हार होती आ रही है। भाई भी

मेरे सब मारे गये। अब मैं माता-पिता को कैसे अपना मुंह दिखाऊं। पहिले तो उसने यह इरादा किया कि कहीं छिप रहूं; माता-पिता से भेंट न करूं। परन्तु पीछे से उसने इस इरादे को बदल दिया और वहीं बैठा रहा। आने पर गान्धारी और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को गले से लगाया और अनेक प्रकार की प्रीतिपूर्ण और दुःखदर्शक बातें कीं। परन्तु दुर्योधन ने माता-पिता से बड़ी ही उदासीनता दिखाई उन से बात तक न की। इस पर उस के माता-पिता को बड़ा दुःख हुआ। गान्धारी ने कहा—

"बेटा, इस समय दुःशासन और दुर्मर्षण तो हैं ही नहीं। अब यदि तुम भी मेरे साथ ऐसा बुरा बर्ताव करोगे तो मैं कैसे जीती रह सकूंगी। हम दोनों के बुढ़ापे की एक मात्र लाठी तुम्हीं हो। तुम जीते रहो; बस मैं यही चाहती हूं। न मुझे राज्य चाहिए, न मुझे पाण्डवों से बदला।"

दुर्योधन बोला—"माता, भरत के इस विमल कुल में मैं बड़ा ही अभागा पैदा हुआ। तेरे पुत्रों का नाश मेरे ही कारण हुआ है। अतएव तू क्यों मुझे अब अपना पुत्र समझ रही है। मैं तेरे पुत्र होने योग्य नहीं। वैर का बदला लिये बिना जीते रहने की शिक्षा तेरे समान मानवती क्षत्राणी को शोभा नहीं देती। सौ पुत्रों के नष्ट होने पर मुझ अभागी को तू व्यर्थ ही जीता रखना चाहती है। जान पड़ता है कि पुत्रशोक के कारण तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं।"

धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ सञ्जय भी थे। उन्हों

ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया बुझाया। परन्तु उसने एक न मानी; उसने अपनी हठ न छोड़ी।

गान्धारी ने कहा—"मैं हाथ जोड़ती हूं। मैं बहुत दिन जीने की नहीं। पुत्र, तुझ से मेरी यही प्रार्थना है कि अब तू युद्ध बन्द कर दे। पाण्डवों से विरोध छोड़ दे। मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को स्वीकार कर ले।"

धृतराष्ट्र बोले—"मां की बात तुझे अवश्य मान लेनी चाहिए। मेरी भी तुझ से यही प्रार्थना है कि जिस तरह हो सके अपने प्राणों की तू रक्षा कर। हम लोगों के सारे बन्धु-बान्धव तो मर ही चुके हैं। तू अब भी यदि पाण्डवों से वैर-भाव न छोड़ेगा तो हम लोगों की बड़ी ही दुर्गति होगी। जिन भीष्म और द्रोण के बल पर हम लोगों ने पाण्डवों की कुछ भी परवा न की वे भी मारे जा चुके। कर्ण के सामने ही उस के पुत्र वृषसेन को अर्जुन ने मार डाला। शत्रुओं ने मेरे सौ पुत्रों को मारने की जो प्रतिज्ञा की थी वह केवल तेरे विषय में पूर्ण होना बाक़ी है। अतएव अब तू वैरभाव छोड़ कर, हम दोनों की आज्ञा से, अपने को जीता रख। तेरे जीने ही से हम लोग जीते रह सकेंगे।"

दुर्योधन—"अच्छा तो इस समय क्या करूं, यह भी तो बतलाइए।"

धृतराष्ट्र—"बेटा, युधिष्ठिर के साथ तू सन्धि कर ले। जो पाँच गांव वे मांगते हैं उन्हें खुशी से दे दे।"

दुर्योधन—"पुत्रनाश के कारण, पिता, आपकी अक्ल मारी

गई है। सुतसंहार के कारण उत्पन्न हुए भीषण हृदयदाहक ज्वर से आप पीड़ित हो रहे हैं। इसी लिए ऐसा कहते हैं। जिस समय मेरे सब भाई जीते थे उस समय तो मैं सन्धि करने के लिए राज़ी ही न हुआ। कृष्ण तक की बात मैं ने न मानी। अब इस समय भीष्म, द्रोण और अपने सारे भाइयों के मारे जाने पर मैं कैसे सन्धि कर सकता हूं। संसार क्या कहेगा! यही न कि दुर्योधन ऐसा कायर है कि अपने सारे आत्मीय जनों को कटवा दिया तब तो सन्धि न की; जब अपने ऊपर बीती तब अपने प्राण बचाने के लिए सन्धि करली। यह बड़ी ही लज्जा की बात होगी। फिर एक बात और भी है। मेल बराबर वालों से किया जाता है, हीनों से नहीं। मेरा पक्ष इस समय हीन है। मेरा एक भी भाई जीता नहीं। पाण्डव पांचों भाई अब तक जीते हैं। वे सन्धि करेंगे क्यों?"

धृतराष्ट्र—"नहीं, बेटा, मेरी प्रार्थना पर वे अवश्य सन्धि कर लेंगे। युधिष्ठिर ने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि यदि मेरा एक भी भाई मारा जायगा तो मैं कदापि जीता न रहूंगा। अतएव उसे भी तो अपनी जान प्यारी है। सन्धि का प्रस्ताव छिड़ते ही वह अवश्य राज़ी हो जायगा।"

दुर्योधन—"हां, ऐसी प्रतिज्ञा की है! एक भी भाई के मारे जाने पर युधिष्ठिर तो अपने प्राण दे देने की प्रतिज्ञा करें और मैं सौ भाइयों के मारे जाने पर भी जीता रहूं!!! हा धिक! जिसने मेरे प्यारे भाई दुःशासन का शोणित

पान किया है उसको अपनी गदा के आघात से मार कर, उस के शरीर के टुकड़े टुकड़े मैं न करूं! उस के पास सन्धि का सन्देश भेज कर जीता रहूं! इस निर्लज्जता का भी कहीं ठिकाना है। ऐसे जीने से तो मर जाना ही मेरे लिए अच्छा है। पिता, कृपा करके मुझे अब तुरन्त ही संग्रामभूमि में जाने के लिए आज्ञा दीजिए। दैव तो हमारे प्रतिकूल है ही। ऐसा न हो जो मेरे देरी से जाने के कारण कोई और विपत्ति हम लोगों पर आ पड़े।"

धृतराष्ट्र—"बेटा, यदि तुम ने समर में जाने का निश्चय ही करलिया है तो शत्रुओं को किसी गुप्त रीति से मारने का उपाय सोचो।"

दुर्योधन—"पिता, आप यह क्या कह रहे हैं। आप का ऐसा कहना क्षत्रियों के योग्य नहीं। जिन शत्रुओं ने हम लोगों को आंखों के सामने ही हमारे बन्धुबान्धव मार डाले उन्हें छिप कर अथवा किसी गुप्त रीति से मारना मेरे लिए अत्यन्त ही लज्जा और अधर्म का काम होगा।"

गान्धारी—"अच्छा बेटा, कुछ देर और ठहर जा। मुझ अभागिनी के लिए तू क्या कहता है। मैं किस तरह तेरे बिना अपना जीवन धारण कर सकूंगी?"
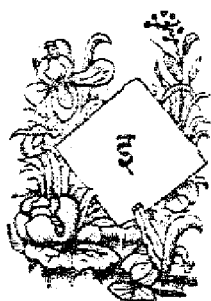
स प्रकार बात चीत हो ही रही थी कि एक नई घटना हो गई। जहां वे लोग बैठे हुए थे वहां से कुछ ही दूर पर कर्ण का ख़ाली रथ घड़घड़ाता हुआ निकल गया। उस की ध्वजा टूटी हुई थी। उसका साज़ोसामान भी सब अस्तव्यस्त पड़ा था। अर्जुन के बाणों से वह रथ छालनी के सदृश छिद्रमय हो रहा था। सारथी शल्य के हाथों से घोड़ा का रास गिर गई थी। बेरास के घोड़े हवा से बातें करते हुए बेतहाशा रथ भगाये लिये जारहे थे। शल्य की आंखों से आंसू बह रहे थे। शल्य और रथ की यह दशा मानों पुकार पुकार कर कर्ण के मारे जाने की घोषणा कर रही थी। रथ को इस प्रकार ख़ाली जाते देख हज़ारों आदमी हाहाकार मचाने लगे। रथ की घड़घड़ाहट और रोने-चिल्लाने का तुमुल नाद दुर्योधन के भी कान में पड़ा। इससे उसका ध्यान उस तरफ खिंच गया। परन्तु तब तक रथ आंखों की ओट हो गया था। दुर्योधन ने अपने सारथी से कहा कि जा कर देख तो आ, क्या मामला है। क्यों लोग इतना कुलाहल कर रहे हैं। सारथी दौड़ा गया। जब तक वह

लाट नहीं आया तब तक सब लोग वहीं काठ के से पुतले बने सशङ्क बैठे रहे। लौटने पर सारथी के चेहरे पर घबराहट के चिन्ह दिखाई दिये। "हाय मरा", "हाय मरा", कह कर वह ज़मीन पर गिर गया। कुछ शान्त होने और दुर्योधन के बार बार पूछने पर उसने कहा—

"महाराज, समर में अर्जुन ने कर्ण को मार डाला। जो रथ अभी यहां से भागता हुआ गया है वह कर्ण का ही रथ है। उस पर कर्ण नहीं। कर्ण के सारथी शल्य ही अकेले बैठे हुए डेरों की ओर गये हैं।"

यह सुनते ही दुर्योधन पर वज्रपात सा हुआ। उसे मूर्छा आ गई। वह ज़मीन पर गिर पड़ा। धृतराष्ट्र और गान्धारी उसे अपने गोद में रख कर विलाप करने और उसको मूर्छा छुड़ाने का यत्न करने लगे। सञ्जय उस पर पंखा झलने लगे। बड़ी देर तक दुर्योधन अचेत अवस्था में पड़ा रहा। जब उसकी मूर्छा छूटी तब वह कर्ण के लिए बड़े ही कारुणिक शब्दों में विलाप करने लगा। वह बोला—

"मित्र कर्ण, कर्ण सुखद बातों से अब मेरा कौन आश्वासन करेगा? तुम भी मुझे अनाथ करके चले गये! जान पड़ता है तुमने मुझे कुछ भी न समझा। इसी से मुझे छोड़ पुत्र वृषसेन के पक्षपाती बन कर उसी के पास चले गये। हाय अपने प्राणाधिक मित्र के न रहने से इस समय मेरे लिए सारा संसार अन्धकारमय हो रहा है। मुझे अपने भाई दुःशासन के मारे जाने का उतना रंज नहीं, अपने

और भाइयों तथा बन्धुबान्धवों के मारे जाने का भी उतना रंज नहीं जितना कि कर्ण के मारे जाने का है। जिस शठ ने मेरे प्रियतम मित्र कर्ण के प्राण लिये हैं उसका और उसके कुल का संहार किये बिना अब मुझे कल कहां।"

गान्धारी—"बेटा, अब मत रो।"

धृतराष्ट्र—"वत्स, ला मैं तेरे आंसू पोछ दूं। अब रोने से क्या लाभ?"

दुर्योधन—"मेरे लिए प्राण देने वाले कर्ण को मरने से तो किसी ने न रोका। अब आप मुझ दीन को उस के लिए आंसू गिराने से भी रोकते हैं? उस के लिए मुझ से और कुछ न हो सका तो जी भर कर रो तो लेने दीजिए।"

सञ्जय ने सारथी से पूछा कि कर्ण के मारने का पुण्य किस के पल्ले पड़ा?

सारथी बोला—"मैं ने तो यह सुना है कि रुधिर बहने से समरभूमि में जो बेहद कीचड़ हो गया था उसी में कर्ण के रथ के पहिये धँस गये। इस से रथ से उतर कर वे उन्हें कीचड़ से निकालने लगे। उसी समय कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने कर्ण के प्राण ले लिये।"

यह सुनते ही दुर्योधन का शोक और साथ ही क्रोध बहुत बढ़ गया। उस ने कहा—"मुझे कर्णादि के शोकाग्नि में यों भी जलना ही है, इस से यही बेहतर होगा कि मैं इसी क्षण अर्जुन से युद्ध मांग कर या तो युद्धाग्नि में मैं ही जल मरूं या उस गाण्डीवधारी को ही जला दूं।"

गान्धारी ने कहा—"बेटा, भीम ने ही सब से अधिक हमारा अपकार किया है। मेरे सौ लड़के उसी के हाथ से मारे गये हैं। अतएव यदि तू ने युद्ध का निश्चय ही कर लिया है तो उसी के साथ युद्ध कर।"

दुर्योधन को यह सलाह पसन्द न आई। उस ने कहा, जिस पापी पार्थ ने मेरे परम प्यारे कर्ण की यह गति की उसी को मैं यमलोक भेजूं गा। भीमसेन को जाने दो। उस की बात पीछे देखी जाय गी। यह कह कर रथ पर सवार होने के लिए दुर्योधन उठने लगा तब धृतराष्ट्र ने कहा कि यदि ऐसा ही है तो, बेटा, किसी को सेनापति तो बना लो।

दुर्योधन — "सेनापति का अभिषेक तो मैं कर चुका।"

धृतराष्ट्र — "किसे सेनापति बनाया, शल्य को या अश्वत्थामा को ?"

दुर्योधन — "मैं ने इस पद पर अपना ही अभिषेक किया है। यह अभिषेक पवित्र जलों से नहीं, किन्तु अपनी आँखों से गिरी हुई अश्रुधारा से मैं ने किया है। अब युद्ध में या तो मैं पार्थ ही का प्राण लूंगा या स्वयं ही परलोक जाकर कर्ण का आलिङ्गन करूंगा।"

इतने में दुर्योधन को ढढ़ते हुए भीमसेन और अर्जुन एक ही रथ पर सवार, आते दिखाई दिये। उन्हें देख कर बेचारी गान्धारी डर गई। उसने कहा — "बेटा, अब क्या होगा ?"

दुर्योधन—" होगा क्या ? मेरी यह गदा तो पास ही है "

गान्धारी — " हाय हाय, मैं बड़ी ही अभागिनी हूं ! "

दुर्योधन — " सञ्जय, घबराने की बात नहीं। यह डरने का समय नहीं। माता पिता को रथ पर सवार करा कर इन्हें शीघ्र ही इन के डेरों को लेजाइए। "

धृतराष्ट्र और गान्धारी रथ पर सवार होने के लिए उठ खड़े हुए। परन्तु भीमसेन और अर्जुन को बहुत पास आगया देख वे ठिठक गये। इतने में भीमसेन की ललकार इस प्रकार सुनाई दी —

" अरे दुर्योधन के सेवको ! बतलाते क्यों नहीं वह शठ इस समय कहां है। कौन ? समझे ? वही जिसने हमारे साथ जुये में नाना प्रकार के छल कपट किये थे ! लाख का घर बनवाकर जिस ने हम लोगों के जलाने की चेष्टा की थी ! जिस की आज्ञा से द्रौपदी के केश और वस्त्र सभा में खींचे गये थे ! जो दुश्शासन आदि का गुरु और कर्ण का मित्र कहलाता है। उसी वृथाभिमानी, महा कपटी दुर्योधन को ढूंढ़ता हुआ मैं यहां आया हूं। "

भीमसेन की इस ललकार को सुन कर दुर्योधन ने अपने सारथी से कहा— "अरे कह क्यों नहीं देता कि कालरूपी मैं तेरा शत्रु यहीं बैठा हूं।"

सारथी ने दुर्योधन की आज्ञा का पालन किया और भीमसेन दुर्योधन के सामने आ कर खड़े हो गये। तब अर्जुन ने भीमसेन से कहा— "आर्य, क्षमा कीजिए।

चचा धृतराष्ट्र इस समय पुत्र-शोक से पीड़ित हो रहे हैं अतएव हमें यहां न ठहरना चाहिए। चलिए, लौट चलें।"

भीमसेन—"मूढ़! सदाचार का उल्लङ्घन न करना चाहिए। यहां आकर गुरुजनों को प्रणाम किये बिना चले जाना शिष्टता के प्रतिकूल होगा। अतएव अपना नाम बतला कर और जो काम हम लोगों ने किये हैं उन को भी याद दिला कर गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए।"

भीमसेन अर्जुन के बड़े भाई थे। अतएव उन्हें उन की बात माननी पड़ी। तब धृतराष्ट्र और गान्धारी के सामने उपस्थित हो कर अर्जुन बोले—

"मैं मध्यम पाण्डव अर्जुन हूं। मैं आप को सादर प्रणाम करता हूं। आप के पुत्रों ने जिस के बल पर हम लोगों से वैर किया था और जिस के बल से वे युद्ध में जीतने की आशा रखते थे उसी कर्ण को तृणवत् समझ कर उस के सिर पर मैं ने ही लात मारी है और मैं ने ही उसे मार कर यमपुरी भेजा है।"

भीमसेन बोले—"लाखों कौरवों का चूर्ण करने वाला, दुःशासन का शोणित पीकर मतवाला होने वाला और दुर्योधन की जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा करने वाला यह भीम भी आप को सिर झुकाकर प्रणाम करता है।"

धृतराष्ट्र—"अरे दुरात्मा वृकोदर! क्यों व्यर्थ ही प्रलाप कर रहा है? इन मर्मभेदी वचनों से मुझे पीड़ा पहुंचाते तुझे लज्जा भी नहीं आती?"

भीमसेन—"तात, भला आप अब क्यों क्रोध करते हैं? जिस समय पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के केश खींचे गये उस समय आप भी तो वहां मौजूद थे। तब तो आप को क्रोध न आया। आप चुप चाप तमाशा देखते और साक्षी-गोपाल बने बैठे रहे। उसी का फल अब आप को भोगना पड़ा है। जिन लोगों ने द्रौपदी का अपमान किया था वे सारे के सारे हम लोगों की क्रोधरूपी आग में पतङ्गों की तरह जल मरे। उन्हें उन के पाप का यथेष्ट बदला मिल गया। मैं ने जो कुछ आप से निवेदन किया वह गर्व से नहीं। अपने भुजबल की प्रशंसा करने के इरादे से मैं ने वैसा नहीं कहा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि पापियों को उन के पापकर्म का बदला मिले बिना नहीं रहता।"

दुर्योधन—"अरे दुर्वृत्त भीम! क्यों गुरुजनों के सामने अपने निन्दित कर्म की प्रशंसा कर रहा है? तेरे भाई अर्जुन और उस नरपशु युधिष्ठिर के सामने ही मेरी आज्ञा से द्रौपदी के केश खींचे गये थे। जुये में जीती गई द्रौपदी मेरी दासी थी। उस के साथ वैसा व्यवहार करने का मुझे पूरा अधिकार था। जिन राजाओं को तूने मारा है उन का भी इस में कुछ अपराध न था। मेरे जीते ही तुझे अपने भुजबल पर इतना गर्व! ठहर!"

इतना कह कर दुर्योधन भीमसेन पर झपट पड़ा। उधर भीमसेन ने भी गदा उठाई। इस पर धृतराष्ट्र ने

दुर्योधन को पकड़ लिया और अर्जुन ने भीमसेन को। अर्जुन बोले—"भाई! इस के सौ भाई मारे जा चुके हैं। इस कारण यह उनके शोक से संतप्त हो रहा है। इस के होशहवाश ठिकाने नहीं। इसी से यह व्यर्थ प्रलाप करता है। मुंह से यह चाहे जैसे अप्रिय वचन कह ले, पर कुछ कर दिखाने की शक्ति इस में नहीं। इसके प्रलाप पूर्ण वचनों पर ध्यान न देना चाहिए"

भीमसेन के हृदय पर अर्जुन के इस उपदेश का बहुत ही कम असर पड़ा। उन्हों ने अर्जुन की बात सुनी अनसुनी करके फिर दुर्योधन को फटकारना और उस पर वाक्यबाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। दुर्योधन भी उनकी बातों का कटु और आक्षेपपूर्ण उत्तर देता गया। यदि देर तक इसी प्रकार और परस्पर परुष वचनों की वर्षा होती तो सम्भव था कि भीम और दुर्योधन वहीं लड़ मरते। परन्तु वहां तक नौबत पहुंचने के पहले ही सूर्यास्त होगया और युधिष्ठिर ने युद्ध बन्द करने की आज्ञा देदी। दुन्दुभी वालों ने जगह जगह दुन्दुभी बजा कर इस प्रकार राजाज्ञा सुनाई—

"युद्ध अब तुरन्त ही बन्द किया जाय। मुर्दों की हज़ारों ढेरियां समरभूमि में पड़ी हैं। उन्हें आग दी जाय। बन्धु बान्धव अपने अपने आत्मीय जनों के लिए आंसुओं से मिली हुई तिलाञ्जलियां दें। बस, ख़बरदार, जो अब किसी ने किसी पर हाथ चलाया।"

यह आज्ञा कान में पड़ते ही, लाचार होकर, भीम को वहां से लौट आना पड़ा।

उधर भीम और अर्जुन अपने शिविरों को गये; इधर दुर्योधन भी अपने स्थान को गया। इतने में कर्ण के मारे जाने की ख़बर जो अश्वत्थामा को मिली तो वे दुर्योधन के पास आकर उपस्थित हुए।

दुर्योधन ने अश्वत्थामा को आदर-पूर्वक बिठाया। अश्वत्थामा ने कहा—"महाराज, कर्ण ने जो मीठी मीठी बातें करके आप को लुभाया था उस का क्या परिणाम हुआ सो आपने देखा। ख़ैर, जो कुछ हो गया सो हो गया। कर्ण के मारे जाने पर मैं ने फिर अपना धनुष उठा लिया है। अब आप चलिए और देखिए कि युद्ध में त्रैलोक्य को कंपाने वाली क्या क्या लीलायें मैं करता हूं। अब आप ज़रा भी दुःख न कीजिए। मैं पाण्डवों से सारा बदला लिये लेता हूं।"

दुर्योधन—"आचार्य्य-पुत्र, आपका भुजबल और पराक्रम अब आप ही को मुबारक रहे। मेरा परम प्रिय कर्ण जब मर चुका तब आप अपना धनुष उठा कर मुझे दिखाने आये हैं! अब मुझे भी मर जाने दीजिए, तब आप युद्ध की तैयारी कीजिएगा।"

अश्वत्थामा—"आप अभी तक कर्ण का पक्षपात किये ही जाते हैं। फिर भी मेरे साथ ऐसा उद्दण्ड व्यवहार! अच्छी बात है! लीजिए, यह मैं चला।"

यह कह कर अश्वत्थामा वहां से चले आये। इधर धृतराष्ट्र और गान्धारी मद्रनरेश शल्य के डेरे पर गये

और दुर्योधन को भी वहीं आने के लिए आज्ञा दी। दुर्योधन ने उन की आज्ञा का पालन किया। वह भी रथ पर सवार हो कर शल्य के स्थान पर पहुंचा।

र्योधन ने शल्य को सेनापति बना कर फिर युद्ध आरम्भ कर दिया। उस के पक्ष के वीरों ने जी होम कर मार-काट शुरू कर दी। शल्य ने भी विकट वीरता दिखाई। दुर्योधन छल, कपट, व्यर्थ अभिमान और वाचालता में तो बढ़ा चढ़ा था ही; पराक्रम में भी वह बढ़ा चढ़ा था। पाण्डवों की सेना में भीमसेन के सिवा और कोई वीर गदायुद्ध में उस की बराबरी करने वाला न था। अतएव समरभूमि में उतर कर उस ने बड़ा ही भीषण युद्ध किया। पर दैव उसके पक्ष के प्रतिकूल था। फल यह हुआ कि युधिष्ठिर ने मद्रराज शल्य को मार डाला। गान्धार-नरेश सहदेव के क्रोधाग्नि-रूपी कुण्ड में स्वाहा हो गये। कौरवों के जो दो चार और वीर बच रहे थे वे भी सब एक एक करके मारे गये। केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा बच रहे। वे भी रणभूमि छोड़

कर भाग गये। जब कौरवों की सेना प्रायः सारी नष्ट हो गई और अवशिष्ट सैनिक भय के मारे तितर बितर हो गये तब दुर्योधन भी अपने प्राण ले कर भागा। रण-भूमि से कुछ दूर पर एक बहुत बड़ा तालाब था। उसी के भीतर वह जाकर छिप रहा। उसे जलस्तम्भिनी विद्या आती थी। इसी से वह जल के भीतर इस तरह बैठ सका। न वह डूबा, न उसे और ही किसी तरह का कष्ट हुआ।

जब दुर्योधन भाग कर तालाब के भीतर छिप रहा और बहुत ढूँढ़ने पर भी न मिला तब पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई। कारण यह था कि उस दिन युद्ध में जाने के पहले भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि आज मैं दुर्योधन को न मार डालूँ तो मैं अपने ही हाथ से अपनी हत्या कर लूंगा। इस से युधिष्ठिर आदि उन के भाई बेतरह घबरा गये। उन्हों ने कहा, यदि आज दुर्योधन न मिला और भीमसेन ने सचमुच ही आत्महत्या कर ली तो हम लोगों की विपत्ति का कहीं ठिकाना न रहेगा। इस लिए युधिष्ठिर ने उसको ढूँढ़ने के लिए चारों तरफ़ आदमी दौड़ाये। सहदेव को उन्हों ने आज्ञा दी कि जितने जासूस तुम्हारे पास हैं सब से कह दो कि जिस तरह हो सके दुर्योधन का पता लगावें। जो कोई उस का पता लगावेगा उसे बहुत बड़ा इनाम मिलेगा।

सहदेव ने युधिष्ठिर की आज्ञा का तत्काल पालन किया। चतुर से चतुर सैकड़ों जासूस भेजे गये। नगर, गांव, वन, उपवन, नदी, तालाब इत्यादि एक भी स्थान ऐसा न रहा जहां दुर्योधन को ढूँढ़ते हुए पाण्डवों के दूत न पहुंचे हों। मल्लाहों और मछली पकड़ने वालों को आज्ञा हुई कि जितने जलाशय हैं, जितनी नदियां हैं, जितने नाले हैं, सब कहीं वे उसे ढूंढें। ग्वालों को आज्ञा दी गई कि उपवनों, बागों और तराइयों में जा जा कर वे उस का पता लगावें। व्याधों और किरातों को आज्ञा हुई कि वन की चावल चावल भूमि छान डालें। ऋषियों, मुनियों की कुटिया तक में ब्रह्मचारी ब्राह्मणों का रूप धर कर चतुर जासूस उसे ढूँढ़ने के लिए जांय। यदि दस पांच आदमी एकान्त में चुपचाप बातें करते हों तो उन की बात चीत का मर्म जानने का यत्न किया जाय। यदि कहीं कोई बीमार पड़ा हो, या कोई कहीं सो रहा हो, तो उसका भी भेद लिया जाय। यदि कहीं हरिण इत्यादि पशु भागते हुए दिखाई दें, अथवा पक्षी ज़ोर ज़ोर से शब्द कर रहे हों, तो उनके ऐसा करने का कारण भी मालूम किया जाय। यदि किसी सन्देहयुक्त जगह में किसी के पैरों के चिन्ह बने हों तो इस का पता लगाया जाय कि वे किस के पैर हैं।

इस प्रकार दुर्योधन को ढूंढ़ने का बड़ा ही विकट प्रबन्ध किया गया। इधर युधिष्ठिर ने चारों तरफ़

जासूस दौड़ाये ; उधर कृष्ण, भीमसेन और अर्जुन भी उसे ढूंढने निकले । सौभाग्य से ये तीनों वीर उसी तालाब के पास जा पहुंचे जिस के भीतर दुर्योधन छिपा बैठा था । किनारे पर पैरों के चिन्ह देख कर कृष्ण तुरन्त ही ताड़ गये कि दुर्योधन अवश्य ही पानी के भीतर है । उन्हों ने भीमसेन से यह बात कह दी तब भीमसेन ने ललकार कर उसे पानी से बाहर निकाला । उस के बाहर निकलने पर भीमसेन के साथ उस का भीषण गदायुद्ध शुरू हो गया । युद्ध हो ही रहा था कि श्रीकृष्ण ने पाञ्चालक नामक सेवक को युधिष्ठिर के पास दुर्योधन के मिल जाने का समाचार देने के लिए भेजा। पाञ्चालक युधिष्ठिर के पास दौड़ता हुआ आया । उसे देख कर युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई । वह ज्यों ही बैठा, युधिष्ठिर उस से दुर्योधन का हाल पूछने लगे ।

युधिष्ठिर— "पाञ्चालक, उस कुरुकुल के कलङ्क का कहीं पता मिला ?"

पाञ्चालक— "देव, पता ही नहीं मिला, कुमार भीमसेन के साथ उस का युद्ध भी हो रहा है । अब उसके मारे जाने में कुछ भी सन्देह नहीं । इसी लिए भगवान् कृष्ण ने मुझे आप के पास भेजा है और यह कहा है कि आप दुर्योधन को मरा हुआ समझ लीजिए, और अपने तिलकोत्सव की तैयारी कीजिए । आप का राज्याभिषेक होने में अब देरी नहीं ।"

यह सुनते ही युधिष्ठिर और द्रौपदी के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन की आंखों से हर्षसूचक आंसू गिरने लगे। युधिष्ठिर ने पाञ्चालक को तो पारितोषक दे कर सन्तुष्ट किया और अपने नौकरों को विजय सम्बन्धिनी माङ्गलिक तैयारियां करने की आज्ञा दी। यह करके उन्होंने दुर्योधन के ढूँढ़ निकाले जाने और उस के साथ भीमसेन के गदायुद्ध होने का साद्यन्त समाचार सुनाने का आदेश पाञ्चालक को दिया। तब वह बोला—

"दुर्योधन का पता न चलने पर बहुत देर तक श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन उसे ढूँढ़ते रहे। हम लोगों ने रत्ती रत्ती ज़मीन छान डाली। पर उस दुष्ट का कहीं पता न चला। मैं भी उनके साथ बराबर उसे ढूंढ़ता रहा। हम लोग निराश हो ही चुके थे कि अकस्मात् एक भील दौड़ता हुआ हम लोगों के पास आया। उसने कहा, वह जो तालाब देख पड़ता है उसके किनारे किसी के पैरों के चिन्ह हैं। उन चिन्हों से मालूम होता है कि कोई उसके भीतर घुस गया है, पर बाहर नहीं निकला। क्योंकि वहां पर उस मनुष्य के उलटे पैरों का एक भी चिन्ह नहीं। यह सुन कर हम लोग तुरन्त ही वहां गये। पैरों के चिन्ह देख कर भगवान् वासुदेव ने कहा— वृकोदर, दुर्योधन को जलस्तम्भिनी विद्या आती है। अवश्य ही ये उसी के पैरों के चिन्ह हैं। वही इस तालाब के भीतर जा छिपा है।

"तब भीमसेन उस तालाब में कूद पड़े और अपनी गदा की चोट से उसे बिलकुल ही उथल पथल डाला। तिस पर भी दुर्योधन वहीं छिपा बैठा रहा। तब भीमसेन ने उसे धिक्कारना आरम्भ किया। वे बोले— "अरे कुरु-कुलाधम! अरे व्यर्थ प्रलाप करने वाले! अरे झूठे अभि-मानी! निकलता क्यों नहीं? क्यों कायरों की तरह जल के भीतर छिपा बैठा है? रे पापी! पाञ्चाली के पट और केश-कर्षण कराते समय तो तू ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। अब वह तेरी बहादुरी कहां गई? चन्द्रमा के समान निर्मल कुरुकुल में जन्म ले कर भी तुझे इस तरह युद्ध से भाग आने और छिप रहने में लज्जा भी नहीं आती? दुःशासन का शोणित पी कर मत्त हुए मेरे सामने आते अब तुझे डर लगता है? तू भगवान् कृष्ण को भी, घमण्ड में आकर, गालियां देता रहा है। ठहर. तेरे इस दुराचार का बदला मैं लिए लेता हूँ। कब तक तू कीचड़ में छिपा बैठा रहेगा?" इतना कह कर भीमसेन ने इस वेग से अपनी गदा के प्रहारों से उस तालाब को मथना आरम्भ किया कि उसके भीतर जितने जलचर थे सब व्याकुल हो गये और तालाब का आधे से अधिक पानी तटों को तोड़ कर बाहर निकल गया।"

युधिष्ठिर—"भद्र पाञ्चालक, क्या इस पर भी वह न निकला?"

पाञ्चालक—"महाराज, निकलता कैसे नहीं? भीमसेन के भुजारूपी मन्दराचल से उस तालाब के मथे जाने पर क्षारसागर से कालकूट विष की तरह दुश्शील दुर्योधन निकल आया। निकल कर उसने भीमसेन से कहा —

'अरे मूढ़! क्यों व्यर्थ ही बकवाद कर रहा है? मेरी इस

गदा को देख। जब तक यह मेरे हाथ में है तब तक मैं डरने वाला नहीं। युद्ध करते करते मुझे कुछ थकावट सी आगई थी। उसे दूर करने के लिए मैं यहां आराम करने आया था।'

"यह कह कर वह ज़मीन पर बैठ गया और पास ही अपने दल के वीरों की लोथों को देख देख ठंडी सांसें लेने लगा। गीधों, कौवों और गीदड़ों के द्वारा अपने बन्धुबान्धवों की लाशों की दुर्दशा होते देख उस का कलेजा दहल उठा।"

युधिष्ठिर— "तब क्या हुआ?"

पाञ्चालक— "तब कुमार भीमसेन ने कहा कि इस समय बन्धु बान्धवों के मारे जाने का शोक करना वृथा है। अब पश्चात्ताप करने से क्या लाभ? पश्चात्ताप करने का मौक़ा तो निकल गया। तू शायद समझता होगा कि तू इस समय अकेला रह गया है और हम पांच भाई हैं। इस की भी तुझे चिन्ता न करनी चाहिए। हम पांचों भाइयों में से जिस एक के साथ तू युद्ध करना चाहे कर सकता है। हमलोग तैयार हैं।"

"इस पर दुर्योधन ने भीमसेन ही के साथ युद्ध करना चाहा। फिर क्या था, भीमसेन तत्काल ही पैंतड़ा बदल कर खड़े हो गये और दोनों में गदा-युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध की समाप्ति न हुई थी कि श्रीकृष्ण महाराज ने मुझे आप के पास भेज दिया। उन का जो संदेश था वह मैं आप को सुना ही चुका हूँ। अब आप अपने राज्याभिषेक और द्रौपदी के वेणी-बन्धन का उत्सव मनाये जाने को तैयार हो जाइए। भगवान् कृष्ण की बात कभी झूठ नहीं होने की। दुर्योधन की जांघ तोड़ कर भीमसेन अब आते ही होंगे।"

पदी ने युधिष्ठिर से पूछा कि इस का क्या कारण है जो भीमसेन ने स्वयं ही दुर्योधन से युद्ध न मांग कर पांचों भाइयों में से उसकी इच्छा के अनुसार किसी एक को युद्ध के लिए चुन लेने को कहा। मैं उन की इस बात का ठीक ठीक मतलब न समझ सकी। यदि कहीं दुर्योधन नकुल या सहदेव के साथ युद्ध मांगता तो हम लोगों विपत्ति का सामना करना पड़ता। क्योंकि नकुल देव में से एक भी उस की बराबरी का नहीं।
ष्ठिर ने कहा, इस का कारण बहुत गूढ़ है। यदि ऐसा न कहते और स्वयं ही उसे ललकार कर ने के लिए खड़े हो जाते तो बहुत सम्भव था कि करने पर राज़ी न होता। दुर्योधन की सारी सेना ी है। उस के सब भाई भी मारे जा चुके हैं। उस पति और उस के पक्ष के मुख्य मुख्य वीर भी को पधार चुके हैं। अब वह अकेला ही बच रहा वह निराश हो कर हथियार रख देता, अथवा हो कर तपोवन को चला जाता, अथवा अपने पिता करने के लिए सन्धि ही कर लेता तो बात बिगड़ हम लोगों ने जो कौरवों को एक एक कर के मार की प्रतिज्ञा की है वह पूरी न होती। मेरा विश्वास

ता ऐसा है कि हम पांचो पाण्डवों में किसी एक से भी वह जीत न सकता। तथापि यह अच्छा ही हुआ जो दुर्योधन ने युद्ध के लिए भीमसेन ही को पसन्द किया। गदायुद्ध में भीमसेन का मुक़ाबला करने वाला संसार में कोई नहीं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि भीमसेन उसे रण में पछाड़ कर तुम्हारी वेणी बांधने के लिए शीघ्र ही आते होंगे।

इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि मुनिका वेष धारण किये हुए एक मनुष्य वहां आ पहुंचा। यथार्थ में वह चार्वाक नाम का राक्षस था। दुर्योधन का पक्ष लेकर युधिष्ठिर को धोखा देने के लिए वह वहां आया था। परन्तु उस का असली भेद पीछे से मालूम हुआ। युधिष्ठिर ने उस कपटी मुनि का बड़ा आदर-सत्कार किया। उसने कहा, मैं प्यासा हूं। उसे पानी पिलाया गया। उस पर पंखा झला गया। थकावट दूर होने पर युधिष्ठिर ने उस के आगमन का कारण पूछा। तब वह बोला—

कपटी मुनि—"मैं आप के शिष्टाचार और आदर-सत्कार से बहुत प्रसन्न हुआ। देखने से आप क्षत्रिय मालूम होते हैं। ब्राह्मणों का आदर करना क्षत्रियों का धर्म ही है। उसे निबाहना आप ख़ूब जानते हैं। भगवान् आप का भला करें। मैं ने सुना था कि कौरवों-पाण्डवों में परस्पर बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है। उसी को देखने मैं आया था। देख कर मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। ऐसी नरहत्या भारत में शायद ही कभी हुई हो। इस समय अर्जुन और दुर्योधन में परस्पर गदायुद्ध हो रहा है। उन्हें लड़ते छोड़ मैं इधर चला आया। अब और युद्ध देखने की मेरी इच्छा भी नहीं। मारकाट का बीभत्स दृश्य मैं और न देख सकूंगा। इस लिए अब मैं शीघ्र ही अपने आश्रम को लौट जाऊंगा।"

युधिष्ठिर—"महाराज, आप ने भूल की। इस समय अर्जुन और दुर्योधन का नहीं, किन्तु भीमसेन और दुर्योधन का गदायुद्ध हो रहा है।"

कपटी मुनि—"बिना सच्चा हाल जाने क्यों आप मेरी बात काटते हैं? भीमसेन और दुर्योधन का युद्ध तो कब का हो चुका। भीमसेन अब कहां? वे तो नामनिःशेष होगये! इसी से बन्धुशोक से विकल हुए अर्जुन, भाई की गदा उठा कर, दुर्योधन के साथ युद्ध कर रहे हैं।"

यह सुनते ही वज्राहत वृक्ष की तरह युधिष्ठिर ज़मीन पर गिर गये। द्रौपदी भी मूर्छित हो गई। तब मुनि ने युधिष्ठिर के सेवक से पूछा कि ये कौन हैं। जब उसने युधिष्ठिर और द्रौपदी का नाम बताया तब वह कपटी मुनि बनावटी दुःख दिखा कर, हाय हाय करने लगा। वह बोला कि मैं ने यह संवाद सुना कर बहुत बुरा काम किया। परन्तु मन ही मन युधिष्ठिर और द्रौपदी की यह दशा देख वह बहुत प्रसन्न हुआ।

मूर्छा छूटने पर युधिष्ठिर ने कहा, महाराज नहीं मालूम मेरे भाग्य में क्या बदा है। भीम के बिना अब हम लोग जीते नहीं रह सकते। कृपा कर संक्षेप से युद्ध का जैसा हाल आप ने देखा हो कह डालिए।

कपटी मुनि—"कहने को जी तो नहीं चाहता, परन्तु जब आप आग्रह ही कर रहे हैं तब कहना ही पड़ेगा। बात यह हुई कि भीमसेन और दुर्योधन का परस्पर युद्ध हो ही रहा था कि अकस्मात् बलराम जी वहां आगये। भीमसेन उस समय दुर्योधन पर बड़ी ही निर्दयता से अपनी गदा चला रहे थे। यह बात बलराम

जी से न देखी गई; क्योंकि दुर्योधन बलराम जी का शिष्य है। उन्हों ने दुर्योधन को कुछ इशारा किया। उस से दुर्योधन ने विना प्रयास भीमसेन को बात की बात में मार गिराया। यह देखते ही अर्जुन के शोक का ठिकाना न रहा। उन की आंखों से आंसू बहने लगे। परन्तु ज़रा ही देर में संभल कर अपने गाण्डीव धन्वा को तो उन्हों ने फेंक दिया और भीमसेन की गदा उठा ली। फिर वे दुर्योधन पर झपट पड़े। यह देख कर श्रीकृष्ण बड़े असमञ्जस में पड़ गये। अर्जुन पर उन की अत्यन्त प्रीति होने के कारण अमङ्गल की आशङ्का से उन्हों ने उस समय बलराम का वहां उपस्थित रहना उचित न समझा। इस से उन्हें समझा बुझा कर द्वारका लौट जाने के लिए राज़ी कर लिया। बलरामजी को उन्हों ने रथ पर चढ़ा लिया और अर्जुन से विदा हो कर वे भाई के साथ द्वारका चले गये।"

इस समाचार ने युधिष्ठिर और द्रौपदी, दोनों को, और भी विकल कर दिया। पहले तो बड़ी देर तक वे रोते और विलाप करते रहे। फिर युधिष्ठिर अर्जुन की सहायता के लिए उन के पास जाने को तैयार हुए। पर उस कपटी मुनि ने ऊपरी प्रीति दिखला कर उन को वहां जाने से रोक दिया। अन्त को युधिष्ठिर और द्रौपदी ने भीम के शोक से अत्यन्त विकल हो कर आग में जल जाना निश्चित किया। द्रौपदी ने उस समय बहुत ही करुणा-युक्त विलाप किया। भीमसेन के गुणों का स्मरण करके उसने बड़ी देर तक अपनी छाती पीटी— "हाय, तुम ने तो दुर्योधन के रुधिर से भीगे हुए हाथों से मेरी वेणी बाँधने की मुझ से प्रतिज्ञा की थी। उसे पूरा किए बिना

ही, नाथ तुम कैसे सुरलोक को सिधार गये ! अच्छा मैं भी तुम्हारे पीछे ही आती हूं ! तुम्हें बहुत देर तक अकेले न रहना पड़ेगा।" इस प्रकार भीमसेन के लिए विलाप करके वह भी आग में जल मरने के लिए तैयार हो गई। तब तक चिता भी तैयार होगई थी और आग धधकने लगी थी। उस समय अपना कार्य्य सफल हो गया समझ वह कपटी मुनि वहां से खिसक गया और द्रौपदी तथा युधिष्ठिर आग में कूदने के लिए चिता के पास आये। युधिष्ठिर ने पत्नी समेत अपने बन्धु बान्धवों को जलाञ्जलि दी। फिर वे आग की तरफ़ बढ़े। वे उस में कूदने हीं को थे कि सहसा दूर से आवाज़ आई कि द्रौपदी कहां है

यह सुनते ही द्रौपदी ने समझा कि अर्जुन को मार कर दुरात्मा दुर्योधन मेरा अपमान करने के लिए मुझे ढूंढ़ रहा है। इस से वह बेहद भयभीत हो गई युधिष्ठिर ने भी द्रौपदी की इस आशङ्का को सच समझा। इतने में दुर्योधन को मार कर खून से भीगे हुए भीमसेन वहां पर पहुंच गये। घबराहट के कारण युधिष्ठिर ने भीमसेन को पास आजाने पर भी न पहचाना। उन्होंने भीमसेन को पकड़ लिया और उन्हें दुर्योधन समझ कर उन की निर्भर्त्सना करने लगे। वे भीमसेन पर प्रहार करने ही को थे कि भीमसेन ने अपना नाम बताया और कहा कि आर्य्य, आप यह क्या कर रहे हैं। मैं दुर्योधन नहीं। मैं आप का आज्ञाकारी सेवक भीमसेन हूं। दुर्योधन की जंघा चूर चूर कर के मैं ने उसे यमराज का अतिथि बना दिया। मेरे शरीर पर जो यह रुधिर का लेप है वह उसी पापात्मा के हृदय का रुधिर है।

यह सुनते ही द्रौपदी और युधिष्ठिर को सारी शङ्का दूर हो गई। उन्हें उस समय परमानन्द हुआ। भीमसेन ने बड़े प्रेम से द्रौपदी को गले से लगाया। उन्हों ने कहा—"राजनन्दिनी, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर आया। जिस भानुमती ने तेरी हंसी की थी वह अब कहां है? अच्छा तो अब तू अपनी वेणी बांध।"

भीमसेन ने रुधिर से भीगे हुए अपने हाथों से उस का वेणी छू दी। तब द्रौपदी की दासी ने उस बरसों से खुली हुई वेणी को फिर से बांध दिया।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर के वीरवर भीमसेन ने द्रौपदी का वेणी-संहार, अर्थात् वेणीबन्धन, कर ही दिया।

इतने में श्रीकृष्ण और अर्जुन भी वहां आ गये। श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि वह मुनि, जिस की दुष्टता के कारण वे आग में जल जाने के लिए तैयार हुए थे, सच्चा मुनि न था। श्रीकृष्ण ने उन से कहा कि उस दुष्ट की कलई खुल गई। ज्यों ही वह आप के पास से गया त्यों ही जासूसों द्वारा उस का हाल हम लोगों को मालूम हो गया। अतएव नकुल ने उसे पकड़ कर क़ैद कर लिया। यह सुन कर युधिष्ठिर को बड़ा हर्ष हुआ।

इस के अनन्तर व्यास, वाल्मीकि, जमदग्नि, जाबालि आदि महर्षियों और नकुल, सहदेव तथा सात्यकि आदि सेनापतियों ने युधिष्ठिर का अभिषेक करके उन्हें राजा बना दिया।

* इति *

यह सुनते ही द्रौपदी और युधिष्ठिर को सारी शङ्का दूर हो गई। उन्हें उस समय परमानन्द हुआ। भीमसेन ने बड़े प्रेम से द्रौपदी को गले से लगाया। उन्हों ने कहा— "राजनन्दिनी, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर आया। जिस भानुमती ने ऐसी हंसी की थी वह अब कहां है? अच्छा तो अब तू अपनी वेणी बांध।"

भीमसेन ने रुधिर से भींगे हुए अपने हाथों से उस की वेणी छू दी। तब द्रौपदी की दासी ने उस बरसों से खुली हुई वेणी को फिर से बांध दिया।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर के वीरवर भीमसेन ने द्रौपदी का वेणी-संहार, अर्थात् वेणीबन्धन, कर ही दिया।

इतने में श्रीकृष्ण और अर्जुन भी वहां आ गये। श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि वह मुनि, जिस की दुष्टता के कारण वे आग में जल जाने के लिए तैयार हुए थे, सच्चा मुनि न था। श्रीकृष्ण ने उन से कहा कि उस दुष्ट की क़लई खुल गई। ज्यों ही वह आप के पास से गया त्यों ही जासूसों द्वारा उस का हाल हम लोगों को मालूम हो गया। अतएव नकुल ने उसे पकड़ कर क़ैद कर लिया। यह सुन कर युधिष्ठिर को बड़ा हर्ष हुआ।

इस के अनन्तर व्यास, वाल्मीकि, जमदग्नि, जाबालि आदि महर्षियों और नकुल, सहदेव तथा सात्यकि आदि सेनापतियों ने युधिष्ठिर का अभिषेक करके उन्हें राजा बना दिया।

* इति *